यह पुस्तक समर्पित है

मेरी पत्नी स्वर्गीय ''**श्रीमती शशि दुबे**'' को

जोकि महान कर्मयोगी रही और उनका आदर्श वाक्य

''**उत्तिष्ठत् जाग्रत प्राप्य बरान्निबोधत**'' **(कठ उपनिषद)**

''उठो, जागो और लक्ष्य की प्राप्ति तक मत रूको''

अनेकानेक लोगों को प्रेरणा देता रहा है

और रहेगा...

प्राक्कथन

ॐ पूर्णमदः पूर्णमदे पूर्णात, पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवा वशिष्यते।।
ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

अपनी आध्यात्मिक यात्रा के दौरान, विगत कई वर्षो में अनेक संत, महात्माओं एवं सिद्ध योगियों से हुई अनेक वार्ताओं, उनके द्वारा कहे अनमोल वचनों, स्वाध्याय एवं वैदिक चिंतन के दौरान हुई अनुभूतियों को संकलित एवं जनमानस तक पहुँचाने की यह प्रेरणा निसंदेह परमपिता परमात्मा द्वारा ही दी गयी है। इस पुस्तक का उद्देश्य, सरल एवं सुगम भाषा में भारतीय वैदिक दर्शन को संतो की वाणी के रुप में उसके गूढार्थ की व्याख्या करना है।

आज बाजार में इस श्रृंखला में कई विद्वानों की पुस्तकें उपलब्ध हैं। मेरा भी प्रयास, आपकी सोच को जाग्रत करने हेतु उन शाश्वत विचारों को ही प्रस्तुत करना है, जो आपकी सोई हुयी चेतना को जगाने का कार्य कर सकें। प्रत्येक विचार आपने आप में संपूर्ण है, सीप में मोती की भाँति है, गाँठ बाँध लेने योग्य है। जीवन में सही दृष्टिकोण रखने, तत्व ज्ञान को समझने एवं वैदिक दर्शन को जीवन में उतारने में यह सरल व्याख्यायें, आपकी मदद करेंगी एवं ज्ञान से परिपूर्ण करेगी, यही मेरी आकांक्षा एवं अभिलाषा है।

इस पुस्तक को छह भागों में विभाजित किया गया है–

1. आध्यात्मिक विचार 2. साधक प्रश्नोत्तरी 3. तत्व ज्ञान 4. चक्र ज्ञान 5. क्रिया एवं अक्रिया ज्ञान 6. सहज ज्ञान

प्रथम सोपान में आपके मस्तिष्क को निर्मल बनाने हेतु "तुम शरीर नहीं हो" को प्रतिपादित करते हुए आध्यात्मिक विचार हैं- सोच में जो ''काई'' लगी है - उसे छुड़ाना है। दूसरे सोपान में "अब जब जिज्ञासा बढ़ी तो-प्रश्न उठेगें"- को ध्यान में रखते हुए प्रश्नोत्तरी है। तत्व ज्ञान के तीसरे सोपान में माया, जगत एवं ब्रह्म के आपसी सम्बन्ध एवं उससे सम्बन्धित गुह्य ज्ञान का वर्ण है। चक्रज्ञान में- "तुम्हारे शरीर के अतिरिक्त भी कुछ है" एवं बीज मंत्रों का उल्लेख है। इस सबके बाद प्रश्न उठता है, कि क्या करें ? हालाँकि मेरा मत है- कि "कुछ करना नहीं है-वह सदैव प्राप्त है" परन्तु जिज्ञासुओं के लिये पहला कदम रखने हेतु यह भी आवश्यक है कि वह कुछ करें। अतएव क्रिया एवं अक्रिया ज्ञान में कुछ बेहद महत्वपूर्ण सिद्ध क्रियाओं का वर्णन है। और अन्त में "वह शब्दातीत है, ज्ञानातीत है" को परिभाषित करते हुये अपनी बात की समाप्ति है। यही सहज ज्ञान है।

आशा है, आपको इस पुस्तक के श्रवण एवं पठन से अपनी आध्यात्मिक यात्रा में गुणात्मक सफलता प्राप्त होगी।

इस आध्यात्मिक, अंतस यात्रा पर आपका स्वागत है।

शुभेच्छु

पं. प्रभुनारायण दुबे

अगस्त 2015

अध्याय – 1 ➤➤➤

आध्यात्मिक विचार

क्या सौवे गफलत के मारे जागु जागु उठि जागु रे – कबीर

जगत ही ईश्वर का सबसे बड़ा चमत्कार है।

- नगर में एक घर, घर में एक आँगन, आँगन में भी कुछ है। नगर शरीर है, घर हृदय है, आँगन ब्रह्म है। जिससे है, उसमें भी कुछ है इसे दहराकाश कहते है। आंगन को भी जानो और आँगन के भीतर जो रहस्य है उसको भी जाने।

  ''मैं यह शरीर नहीं हूँ – इस भाव को समझने हेतु अनेक उदाहरण हैं। उनमें से कुछ उदाहरण नीचे दिये गये हैं – 'माया' के आवरण को हटाने के लिये निम्न उदाहरण प्रयोग में लाये जा सकते हैं।

1. स्वपनावस्था – जिस प्रकार स्वपन से जाग्रत अवस्था में आते ही 'स्वपन असत्य है', का बोध हो जाता है। उसी प्रकार आत्मानुभूति होते ही संसार की असत्यता का बोध होता है। दोनों ही स्थितिओं में नींद खुलने भर की देर है। संसार, हमारा 'जाग्रत स्वपन' है। अब जिस प्रकार स्वप्न में जिसे देखा – क्या उसकी स्वतंत्र सत्ता है? नहीं। उसी प्रकार इस जाग्रत स्वप्न में जिसे-जिसे देखा, क्या उनकी स्वतंत्र सत्ता है? उत्तर वही है – ''नहीं'' स्वप्न के समाप्त होते ही वास्तविकता का बोध सम्भव है।

2. चलचित्र – गीता के नवें अध्याय में श्लोक 5/6 में बड़ा विरोधाभास है। एक ओर यह कहा गया, कि यह संसार मुझमें है और फिर यह कहा गया, कि यह संसार मुझमें नहीं है। इसे समझने हेतु 'मूवी' का उदाहरण लें। पर्दे पर फिल्म चल रही है। पर्दा – फिल्म, बिना पर्दे के संभव नहीं है। पर पर्दे में फिल्म होते हुये भी नहीं होती है। पर्दा – जिस प्रकार फिल्म को साधे हुये है – उसी प्रकर वह ब्रह्म भी संसार को साधे हुये है। जिस प्रकार के रस (संभोग, वियोग, हर्ष, विषाद, क्रोध, प्रेम) इत्यादि फिल्म देखने में उत्पन्न होते हैं – उसी प्रकार के सारे रस, जीवात्मा इस शरीर से तादात्मय स्थापित करके संसार से प्राप्त करती है। जिस प्रकार फिल्म-असत्य है। उसी प्रकार संसार भी। जिस क्षण समझ में आ गया – कि 'मैं' इस संसार रूपी फिल्म में, इस शरीर को लेकर अपने हिस्से की एक्टिंग कर रहा हूँ – उसी क्षण वास्तविकता की एक झलक दिखाई देनी सम्भव है।

3. कठपुतली – कठपुतली के खेल में कठपुतलियाँ वास्तव में तत्य करती दिखाई देती हैं। यह दृश्य जगत है। उनसे मन/बुद्धि रूपी तार जुड़े हैं। ये तार, चेतना द्वारा अलग-अलग पैटर्न में खींचे जा रहे हैं। अगर मन एवं बुद्धि रूपी यह तार काट दिये जायें – तो कठपुतली का खेल बन्द हो जाता है।

4. लहर एवं समुद्र – लहर का समुद्र से हटकर कोई अस्तित्व नहीं है। जब एक लहर, दूसरी से एवं पूरे समुद्र से अपने आपको अलग मानती है, तो 'मैं' की उत्पत्ति होती है। जब 'मैं' समाप्त होता है, तो ज्ञात होता है, कि केवल समुद्र ही था, और है। यही आत्मबोध है।

5. उपकरण एवं बिजली – यह शरीर एक उपकरण है और जब चेतना की बिजली आती है, तो यह कार्य करता है। आँख तो मुर्दे पे भी होती है – पर वह देख नहीं सकता – क्योंकि चेतना, शरीर का साथ छोड़ गयी। जिस प्रकार बिजली, उपकरण पर निर्भर नहीं है – उसी प्रकार वह ब्रह्म, जीवात्मा पर निर्भर नहीं है।

6. घटाकाश – घड़े के अन्दर एवं बाहर के आकाश में कोई अन्तर नहीं होता है। जब घड़ा टूट जाता है, तो दोनों आकाश एक हो जाते हैं। अहंकार एवं

अपने को घड़ा (देह) मानने की मिथ्या धारण के टूटते ही, चित्त अपने स्वरूप में लीन हो जाता है। यही बोध स्थिति है।

7. रस्सी एवं सर्प : अंधकार (अज्ञान/माया) में रस्सी (मूल स्वरूप) में सर्प (जगत अथवा द्वैव) की प्रतीति होती है। ज्ञान होते ही केवल मूल चेतन शेष रह जाता है।

   और अन्त में, जिस प्रकार काँटे से काँटा निकलता है - उसी प्रकार 'माया' के काँटे का 'ज्ञान' 'योग' 'भक्ति' एवं वैराग्य के सम्मिलित काँटे से निकालने की आवश्यकता है। अब यहाँ प्रश्न उठता है? कि काँटा निकालने के बाद, क्या दोनों काँटे रखे जायेंगे - या फेंक देने है। अतएव ऊपर दिये उदाहरण उस वास्तविक सत्य की ओर केवल इशारा करने के लिये प्रयोग में लाने के विचार हैं - 'वास्तविकता जान लेने के बाद इन सारे उपायों की भी कोई आवश्यकता नहीं है। पुनः सरल भाषा में कहे - तो ज्ञान, वैराग्य, योग, भक्ति, क्रिया सब साधन हैं - साध्य नहीं।

- आँख मेरे कारण देखती है जो तुम देख रहे हो वह माया है। जो गोचर जहँ लग मन जायी, सो तुम जानो माया भाई।
- जिसने अपने को जान लिया है, वही जिन्दा है। जिसने अपने को नहीं जाना- वह मुर्दा है, मुर्दे दो तरह के है- एक खड़े एवं एक पडे। जिन्दा दिल (आत्म ज्ञानी) ही इस संसार में जीते है बाकी मुर्दे चल रहे है। इसीलिये जब तक इन्द्रियों में, शरीर में शक्ति है, तब तक ज्ञान प्राप्ति हेतु चल दो।
- भगवान को ढूँढ़ने कभी न निकलना वह अपने भक्त को स्वयं ढूँढ लेता है। उसे मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे में मत खोजो। अरे यह सारी सृष्टि उसी की तो गाथा है।
- तुम जहाँ सुखी दुखी होते हो-माया है, जहाँ आनन्द है, शान्ति है, वह सत् है। जो मिलता है और छूट जाता है वह माया है। जो निरन्तर है वह सत् है जो सदा से है वह सत् है। सत् का त्रिकाल में भी नाश नही होगा। सत् के संग को सत्संग कहते हैं। सन्तों के संग से सत्चर्या मिलती है। सत्चर्या से हमें असत् का ज्ञान होता है। असत का ज्ञान होने से सत् शेष रह जाता है। सत्संग में न जाना है न आना है पर देखना है कि सत् क्या है एवं असत् क्या है। सत् कभी मिलता नही है, क्योंकि कभी छूटा ही नही था। यह बात केवल शुद्ध बुद्धि द्वारा ही समझी जा सकती है। बुद्धि शुद्ध तभी रहती है, जब यह निरन्तर अभ्यास किया जाए कि मेरा कुछ नही है, एवं मुझे कुछ नही चाहिए। संसार में जितनी देर अपना कुछ न मानो एवं कुछ न चाहो, उतनी ही देर बुद्धि शुद्ध रहती है। जैसे ही कुछ माना पुनः बुद्धि अशुद्ध हो जाती है। मेरा कुछ नहीं है एवं मुझे कुछ नहीं चाहिये यह शुद्ध बुद्धि है। शुद्ध बुद्धि में बोध होता है। तात्पर्य यह है कि सत्संग एवं शरणागत् भाव ही अज्ञानता का नाश करता है। हम जो कुछ भी करते है अहंकार के तृप्त होने के लिये करते हैं। पुनः इसे ऐसे समझा जाये कि, जो आता जाता है, वह सत्य नहीं है - माया है। ध्यान में भी जो आता है, वह भी चला जाता है। कबीर कहते है कि - अजर अमर अविनाशी साहब, नर देही क्यों आया। रे मूरख अबहूँ चेत, आय जाय सो माया।। माया ही ब्रह्मस्वरूपिणी होकर आती है। सत्य ही निरन्तर है लेकिन जिसमें अन्तर है वही माया है। माया भगवान की जड़ शक्ति है। मन, बुद्धि और इन्द्रियां उसमें नहीं होती है। माया का कभी भी अन्तय् भाव नहीं हो सकता। माया का एक रूप जहां सृष्टि का निर्माण कर रहा है वहीं दूसरा रूप हम पर हावी हो रहा है, जिससे जीव अपने स्वरूप को भूल रहा है। माया जड़ है, एवं इसी से अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों की रचना हो रही है।
- मैं परमात्मा का ज्ञान हूँ।

  मैं परमात्मा का प्रेम हूँ।

मैं परमात्मा की शान्ति हूँ।

मैं परमात्मा की शक्ति हूँ।

अगर केवल इसी का ध्यान एवं अभ्यास करो तो सत्य जीवन में उतर आयेगा।

- शान्ति सदैव है, सुख की आशा ने हमें शान्ति से विमुख कर दिया है।
- संकल्प हमें बंधन में ले जाने वाला है या मुक्त करने वाला है। शक्ति के द्वारा संकल्प होते है चाहे वह पुण्य संकल्प हो या पाप संकल्प हो। अच्छी संगति में जब लोग पहुँचते है तब शुभ संकल्प कर पाते हैं। हर व्यक्ति में भोग के संकल्प तो होते है पर परमात्मा के योग के संकल्प नहीं होते हैं। हमारे भीतर जो परमात्मा की शक्ति है उसी से हम संकल्प करते है। एक सत् संकल्प होता है और एक असत् संकल्प होता है। यही संकल्प हमारे जीवन का पक्ष बन जाते है। परमात्मा को पाने का संकल्प कोई विरला ही करता है। विनाशी से सम्बन्धित संकल्प संसार से बांधने वाले होते है। यही संकल्प हमें बंधन में ले जाते है। बुद्धि मूर्छित है-सुख के पीछे, धन के पीछे, मान के पीछे, बल के पीछे, नाम के पीछे, रूप के पीछे, शिक्षा के पीछे, संगठन बल के पीछे, पद के पीछे। मूर्छित बुद्धि से माने हुये संकल्पों की पूर्ति तो हो सकती है पर सतत सुख (Bliss) की प्राप्ति नहीं हो सकती।
- बुद्धि द्वारा माने हुये सुखों की पूर्ति तो होती है पर शान्ति नहीं मिलती। सुख, धन, मान, पदार्थों की चाहत अशान्ति का कारण है। सन्यासी होने से भी तेरा-मेरा भाव समाप्त नही होता है। शान्ति वहां होती है, जहां कोई चाह नहीं होती। मेरा नहीं तो-मुक्ति एवं चाह नहीं तो-शान्ति। इच्छाओं की पूर्ति में क्षणिक सुख मिलता है, एवं इच्छाओं की अपूर्ति में क्षणिक दु:ख। अतएव इच्छाओं के परित्याग में ही शान्ति है, क्योंकि इच्छायें हमें भिखारी बना देती है। *"उन इच्छाओं को छोड़ दो जो अपने आप पूरी नहीं हो रही है, प्रयास करने से जिन इच्छाओं की पूर्ति न हो वह हमारे हिस्से की नहीं है। इसका सोच न करें। सहज भाव में जिन इच्छाओं की पूर्ति हो रही हो, वह तुम्हारे हिस्से की है। इनका भोग करें।"* पुण्य के रहते इच्छाओं की पूर्ति होती है। इसीलिए योगी संसार में ऐसे रहता है जैसे पानी पर नाव, वहीं भोगी संसार में एसे रहता है जैसे नाव में पानी।
- हम परमात्मा से प्रेम नहीं करते हैं, अपितु पदार्थो से करते है, धन से करते है। यही तृष्णा है जो कि कृपणता को जन्म देती है। कृपणता का अर्थ है कि तुम वस्तुओं के प्रेम में पड़े हो। चूँकि तुम जिससे प्रेम करते हो वैसे ही हो जाते हो कृपण से ज्यादह कोई कुरूप् नहीं होता है। विनाशी वस्तुओं (सांसारिक पदार्थो) की चाहत से भक्ति, मुक्ति एवं शान्ति नही हो सकती है। सांसारिक पदार्थो ने सुख ढूंढ़ना बिडम्बना है।
- सांसारिक वस्तुओं का प्रेम ही मनुष्यों में घृणा और दु:ख का कारक है। अत: जो धन, व्यक्तियों और वस्तुओं के प्रेम को छोड़ सके तो वही व्यक्ति ईश्वरीय प्रेम की ओर बढ़ जाता है।
- जो विषय और वस्तुओं से घिरा है वह नास्तिक है।
- प्रेम (परमब्रह्म परमात्मा)को हम नहीं पाना चाहते पर हम प्रेम (भौतिक जगत में) किसी से करते हैं। यही द्वन्द है। (प्रेम करना नहीं है, प्रेम ही हो जाना है) प्रेम ही ईश्वर है। प्रेम परम प्रकाश है, एवं अंहकार परम अंधकार है।
- प्रार्थना तभी हो पायेगी जब तुम प्रभु के प्रति प्रेम से भर जाओगे। 13 वर्ष की मीरा को विरह का ज्ञान हो गया था उसी विरह से उसने प्रभु को पा लिया। प्रभु से यदि प्रेम करोगे तो ही तो मीरा की पीड़ा को समझ पाओगे। जिसने प्रेम नहीं किया, वह कैसे समझ पायेगा? जिसने प्रभु के प्रेम की

प्याली पी, वह उसे पाकर रहेगा। मीरा ने वह प्याली पी, और संसार से अदावत कर ली। समुद्र के उफान को कोई रोक नहीं सकता एवं आँधी के प्रवाह को कोई रोक नहीं सकता इसी तरह प्रेम की तपन जिसको पैदा होगी उसके मिलन को कोई रोक नहीं सकता। विरह की आग में चलना सरल नहीं है। जब प्रेम के ढोल की आवाज सुनते ही मन नाचने लगे तो समझ लेना कि जीवन जाग गया है। सिजदा और नमस्कार तो एक कला है। प्रभु तो प्रेम से प्रकट होते है। प्रभु से यदि रिश्ता नहीं जोड़ा, तो ध्यान और समाधि नहीं समझ पाओगे। जितना ही प्रेम से हृदय को भर लोगे, उतना ही दूसरे को प्रेम दे पाओगे। ज्ञानी जहाँ आत्मचिन्तन से पहुँचते है भक्त वहाँ सहज ही पहुँच जाते है। जरा सा हृदय से जियो, तो भाव से बना भोजन प्रसाद बन जायेगा। तुझे भाव से जीना आ जाये तो जीवन प्रसाद बन जायेगा। "शुरूआत प्रार्थना से होती है और अन्त समाधि में"। शुरूआत तो करो।

- व्यक्तियों के प्रेम से रस की प्राप्ति तो होगी पर तृप्ति नही होगी। तृप्ति तभी होगी जब प्रभु से प्रेम होगा। अत: हमें सांसारिक प्रेम से ऊपर उठना है। सच्ची चाह वह है जो पूर्ति के बिना चैन न लेने दे। किसी से प्रेम होता है तो उससे मिले बिना चैन नहीं होता। चाह से अशान्ति की उत्पत्ति होती है। जब कोई याद न आये, तब मैं हूँ। अन्यथा स्मृतियाँ भूत की होती हैं। चाह एवं चेष्ठा के तिरोहित होने पर स्वयं की अनुभूति होती है। जैसी चाह होती है, मनुष्य वही कर्म करता है। चाह रहित होकर अधिक देर नहीं ठहर सकता। परन्तु चाह और चेष्ठा न हो तो वहाँ मनुष्य के अन्दर मौन उतर जाता है। बुद्धि जब मौन (शुद्ध बुद्धि) हो जायेगी तभी बोध होगा। चाह के साथ चिन्ता चलती है। चाह नहीं होती तो चिन्ता भी नहीं होती। जब सबकुछ निश्चित है तो फिर चिन्ता क्यों?
- ध्यान की अवस्था में सवेरा तो हो जाता है पर सूरज नहीं निकलता है। ध्यान की ये अवस्था सतत् जागरण की अवस्था है।
- परमात्मा रुपी सागर में "हूँ" नाम की मछली रहती है। सागर में मिटती है, सागर में जीती है। यदि "हूँ" नाम की यह मछली "मैं" नाम में समा जाती है, तो चेतन शेष रह जाता है। अन्यथा, मैं और हूँ दोनो बने रहते है और यही अज्ञान है।
- मन, क्रम, बचन छाड़ चतुराई। चतुराई तो छोड़ों।

  मनतहि कृपा करहिं रघुराई।।

  राम की कृपा सबके लिये समान होती है।
- मन से मानना होता है, बुद्धि से जानना होता है, एवं प्रज्ञा में देखना होता है। मानने के पीछे भाव एवं प्रीति होती है। मानने के पीछे निहित सुख होते हैं। मन में यदि संसार चल रहा है तो संसारी व्यक्ति कहलाता है। मन से युक्त होकर हम संसार को पकड़े हुये हैं एवं बुद्धि से युक्त होकर हम योगी हैं। मन, जब किसी इन्द्रिय विशेष से संयुक्त होता हैं तभी उस इन्द्रिय में क्रियाशीलता जाग्रत होती है। फलस्वरुप हम संसार में पुन: उतर जाते है। मन और बुद्धि से परे यही प्रत्याहार तो सीखना है।
- सबसे सरल भाव यह है कि भगवान को दूर न मानो संसार में कुछ अपना न मानो। यह दृष्टि प्राप्त कर ली, तो सारे ग्रन्थ व्यर्थ है।
- जरा विचार करें कि –

- प्रेम किससे करते हैं? संसार (जड़/झूठ) से या परमब्रह्म परमात्मा (चेतन/सत्य) से
- साधन (इन्द्रियों) का उपयोग कहाँ कर रहे हो?
- मन एवं बुद्धि का प्रयोग कहाँ कर रहे हो?

- मनुष्य में संसार रहता है या संसार में मनुष्य रहता है?
- मैं में गति है या शरीर में?
- संसार सत्य है या झूठ?
- जिसे तुम चाहते हो वह सदैव होगा या नहीं? (नित्य/अनित्य)
- तुम्हारे साथ जो प्रेम है वह सदैव है या कभी-कभी?
- भगवान से चाहते हो या भगवान को चाहते हो?
- गुरू को चाहते हो या गुरु से चाहते हो?
- संकल्प हमे बंधन में ले जाने वाला है या मुक्ति में?

यह अपने में देखना है, इनका उपयोग यदि हम सांसारिक सुखों (भोग भाव) की प्राप्ति के लिए कर रहे है। तो परम सत्य एवं सुख (योग भाव) की प्राप्ति असंभव है। अनित्य वस्तुओं में सुख ढूँढ़ना ही अधोगति है।

- चूँकि सुख जहां मिलता है, मन वही ठहरता है। मन से उत्पन्न भाव का यह भोग है।
- तृष्णा कहते है - और मिले, अर्थात, और की भूख को तृष्णा कहते हैं।
- आध्यात्मिक उन्नति का तात्पर्य है - कि नीचे प्रवाहित होने वाली शक्ति को ऊपर मोड़ देना।
- परमात्मा से प्राप्त हुआ प्रेम पदार्थों में अटका हुआ है जब तक प्रेम पदार्थो में है तब तक वह संसारी है और परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती है।
- प्राप्त सुख से दूसरों की झोली भरना सीख लो वह तुम्हे धीरे-धीरे प्रभु की ओर ले जायेगा तब भिन्नता दूर हो जायेगी। "अपना सा दुख सबका जानो", तब मनुष्यता जीवन में उतरती है। मनुष्यता में ही दिव्यता का आविर्भाव होता है। पशुता में दिव्यता नहीं उतरती। किन्तु होता यह है कि - सुख को अपना मान कर कामी बन गये, अधिकार को अपना मान कर अभिमानी बन गये, व्यक्ति को अपना मान कर मोही बन गये, पदार्थ को अपना मान कर लोभी बन गये। चूँकि अज्ञान कहते है - ज्ञान से न देखना। मूलत: हम स्वयं ज्ञानस्वरुप है परन्तु हमने अपने ज्ञान में पदार्थ भर लिये है और उसी से हम लोभी, अभिमानी और मोही बन गये हैं। पुन: स्पष्ट कर दें कि लोभ मोह एवं अभिमान के अन्त होने पर ही सत्संग का अभ्युदय होता है। काम क्रोध, लोभ, मोह, चिन्ता, मृत्यु, अभिमान का भय प्रभु चरणों के सतत् एवं अनवरत् चिन्तन से ही नष्ट होता है।
- चाह ही हमें संसार में नचाती है, चाह रहित होने में ही शान्ति है। मन में सुख के भोग की चाह ही, भक्ति, ज्ञान, योग, त्याग, एवं तप को पूर्ण नहीं होने देती है। जहाँ मेरा-तेरा नहीं है, वहीं मुक्ति है। जो जिसे (विषय) पकड़े हुये है उसी के बंधन से जकड़ा हुआ है। यहाँ तक कि, जो अपने सुख का ध्यान रखता है वह अपने को पकड़े हुये है। इसी प्रकार जो जिस वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति से सुख की आशा रखता है वह उस व्यक्ति या वस्तु को पकडे हुये है। जब तक व्यक्ति अपने को देह मानता रहेगा तब तक वस्तुओं और व्यक्तियों से सम्बन्ध नहीं टूटेंगे। वस्तुओं का लोभ, सम्बधों से मोह, एवं एकाधिकार का अभिमान मनुष्य के उत्थान में बाधक है और मोह के रहते सत्य से प्रेम हो ही नहीं सकता। संकल्प करो कि हम सुख दु:ख के बंधन से अलग रहेगें। अभिमानरहित रहेंगे। इसके लिए हमें प्रयास करना होगा कि चित्त, मन एवं बुद्धि अशुद्ध न हों इसके लिये हमें सतत् रुप से सावधान रहना पड़ेगा। बुद्धि को शुद्ध रखने के लिए सबसे सरल उपाय यह है कि हम निरन्तर यह चिन्तन करें कि इन्द्रिय जनित ज्ञान सत्य नही

है। इच्छा न करने से भी मन शुद्ध होता है। किसी का बुरा न चाहने से भी मन शुद्ध होता है एवं अन्त में केवल परमात्मा को ही अपना प्रेम पात्र मानने से यह शुद्ध होता है। फिर भी याद रखो कि यदि कुछ वासनायें (इच्छायें) अन्त समय भी रह जायेगीं तो उनकी पूर्ति के लिये तुम्हे आना ही होगा।

- संसार के बंधन हमने अहं के आधार पर बनाये हैं। अहं के आकार के बदलने का नाम ही सत्संग है, एवं अंहकार से मुक्ति है। अहं के आकार बदलना ही जीवन का ध्येय है जिससे अहंकार छूट जायेगा। भोगी अहंकार के पास अपना कुछ भी नहीं है। परमात्मा से हमें ज्ञान, शक्ति, प्रेम और देखने की जो क्षमता मिली हुयी है, वह अगर उर्ध्वगामी न होकर अधोमुखी हो जाये तो नीचे आकर, वह अहंकार से मिल जाती है। अहंकार इनका भोगी बन जाता है फिर भोगी अहंकार इन्हे अपना लगता है। जब पता चलता है कि भोगी अहंकार के पास अपना कुछ भी नहीं है, तब वास्तविक ज्ञान होता है। कहीं यह जानने में देर ना हो जाये।
- नाम और रूप से हम प्रभु की ओर चलते हैं। नाम और रूप दोनों उपाधियां हैं। चौतन्य और मीरा भी नाम और रूप लेकर चले थे।

"नाम रूप दो ईश उपाधि"

नाम से रूप तक पहुँच जाओगे फिर रूप से ईश का ज्ञान हो जायेगा।

- सत्य क्या है? –

"सत् हरिभजन, जगत सब सपना।" (1)

"बिनु हरिकृपा मिलहिं नहि सन्ता। पुण्य पुंज बिन सुलभ न सोई"।। (2)

अर्थात – जब पुण्यों का उदय होता है तब कोई सन्त (गुरू) मिलता है। जैसा पुण्य होगा उतनी ही शीघ्र सन्त (गुरू) मिलेगा। पुण्य है तो हरिकृपा मिलेगी। हरिकृपा से सन्त मिलते है। सन्तों से सत्संग मिलता है अर्थात सत्य का साथ मिलता है। गुरु कृपा एवं गुरु मिलन से ही सत्यानुभूति होती है। तात्पर्य यह है कि पुण्य कर्मो के कारण ही सत् कर्मो में रुचि उत्पन्न होती है।

- परमात्मा सदैव प्राप्त है। उसको प्राप्त करने का प्रयास करना विडम्बना है। जो सदैव प्राप्त है, उसे छोड़ना नही है। प्रयास तो सांसारिक पदार्थो को प्राप्त करने के लिये करना पड़ेगा। तुलसी कहते है कि "सबहिं सुलभ सब दिन सब देशू।"
- देखने वाला सदा रहता है, जो दिख रहा है वह सदा नहीं रहेगा क्योंकि वह अनित्य है। यह ज्ञान स्वरूप चैतन्य ही है, जो देख रहा है।
- यह शरीर संसार का है यह मन प्रकृति का है एवं यह जीव ईश्वर का अनन्त एवं अखण्ड अंश है।
- सुख स्वरूप हम स्वयं है, पर अज्ञानता से हम दूसरों को सुख का दाता मान लेते है।
- विनाशी पदार्थो के मिलन को 'संयोग' कहते है। वहीं अविनाशी पदार्थो के मिलन को 'योग' कहते हैं। योग का अभ्यास करो। अपने चेतन स्वरुप, आनंद एवं ज्ञान स्वरुप का ध्यान करना है। प्रेम को पदार्थो सें अलग करना हैं अर्थात विनाशी वस्तुओं से मुक्त करना है तब यह प्रेम आनन्द बन जायेगा, शान्ति बन जायेगा।
- पंचतत्व – मिट्टी बनी पानी से, पानी अग्नि से, अग्नि वायु से, वायु आकाश से, एवं आकाश प्रकृति से। प्रकृति ही परमात्मा की जड़ शक्ति है। (तैत्तरीय उपनिषद)

- त्यागी वह है जो मन में बसी हुयी वासनाओ, और तृष्णाओं को छोड़ दे। मन के अन्दर अनेक चोर-इच्छाये व वासनायें छुपी रहती है, उनको त्याग देने वाला ही त्यागी कहलाता है। पुण्य कर्म से त्याग एवं दान की शक्ति आती है। त्याग तथा दान से सेवा करने की योग्यता पूर्ण होती है। अपने को सेवक स्वीकार करने से सेवा स्वत: होने लगती है।

- जिन इच्छाओं की पूर्ति हो रही है उनमे संतोष करे, यही प्रारब्ध है। कोई सुख भोग रहा है पर उसे होश नहीं है वहीं दूसरी ओर कुछ लोग छोटी छोटी बातों के लिये तरस रहे हैं। मूलत: कोई किसी की इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर सकता है। पुण्यों एवं प्रारब्ध कर्मो के कारण ही सुख भोग होता है। प्रयत्न करने से भी जिन इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती है वह हमारे प्रारब्ध स्वरुप नहीं है। अब अगर हम अधिकार के भोगी बन कर सुख भोगते है तो मानो या न मानो तुम्हे अपने, पुण्यों की पूंजी को गवाँना ही होगा।

- कल्पना को ध्यान नही समझना चाहिए। कल्पना जहाँ समाप्त होती है, ध्यान वहीं से आरम्भ होता है। कल्पना में लोग वही देखते है जो देखना चाहते है और वह आत्मदर्शन नहीं है। दूसरी ओर ध्यान में हम निर्विषय होते है।

- हृदयरुपी मंदिर में ईश्वररुपी मूर्ति को बैठाना है। इसके लिये मन्दिर या किसी स्थान विशेष पर जाना आवश्यक नहीं है। इसके लिये तो हरि कथा में ही जाना पड़ेगा। मनुष्य का शरीर एक अलौकिक पात्र है। श्रद्धा का पात्र जितना बड़ा है उतना ही रस ले लेंगे। पात्र यदि अपवित्र है तो ईश्वरीय रस के आस्वादन से वंचित हो जायेगे। तूने उन रसों को तो पिया जिनसे इन्द्रियों को बल मिला पर हरिकथा का रस अपने कानों द्वारा नहीं लिया। "हमें इस अपूर्व पात्र (शरीर) से ब्रह्मानन्द पीना था, पर हमने इसमें विषयानन्द भर दिया।" मनुष्य शरीर रूपी हिरण्यमय पात्र में कामना, तृष्णा और वासना के रस भर दिए और अपात्र के हाथ में पात्र पड़ गया है। सब पूछते है कि प्रभु की प्राप्ति कैसे हो? उत्तर बहुत सरल है - "विरह की आग ले आये, आँखों में प्रभु के प्रति प्रेम के आँसू हों, हृदय में मिलन की आग हो, और सिर पर सन्तों की चरणरज रुपी कृपा हो तो प्रभु बुद्धि में विराजमान होगें।" एक और सरल उपाय है कि मन को प्रभु के चरणों में रखो। यदि चरणों से मन हट जाये तो मन को प्रभु के नाम में रखो। यदि नाम से मन हट जाये, तो लीला में स्थिर करें, यदि लीला से भी हट जाये तो धाम में स्थिर करें।

सत्यम परं धीमहि।

परमात्मा हमारी बुद्धि में कब बैठेगा? जब मन पवित्र हो जायेगा, "मन रूपी पात्र को पवित्र करने के लिये तीन चीजों की आवश्यकता होती है।"

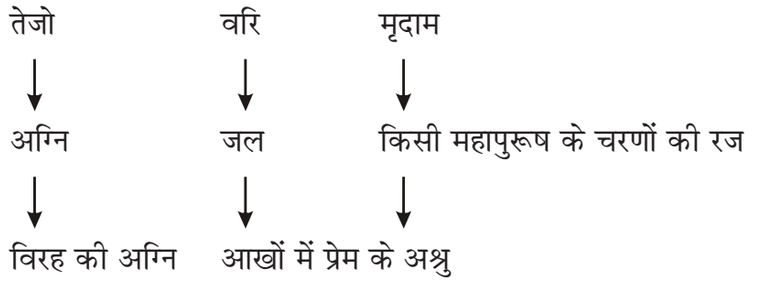

- यदि संसार से वैराग्य हो जायेगा तो प्रभु चरणों में अनुराग हो जायेगा। अनुराग के पीछे वैराग्य चलता है। ईश्वर से मिलने की वह आग पैदा हो जाये, एवं प्रभु चरणों में अनुराग हो जाये, तो संसार से वैराग्य हो जायेगा। संसार में सबसे बड़ी बात है किसी को चाहना, एवं सबसे निकृष्ट बात है किसी से कुछ चाहना। अतएव सांसारिक चाह को समाप्त करके हमें निम्न भावों एवं गुणों को अपने जीवन में प्राथमिकता देनी होगी-

- सबको आत्मस्वरुप में देखना
- प्रभु के चरणों में अनुराग
- भौतिक विषयों के ऊपर बृम्हानन्द एवं गुरु की खोज को प्रार्थमिकता "मोह शरीर का धर्म है। कोई भी जीव प्रेम के बिना नहीं रह सकता है। दु:ख का अन्त तब होता है, जब भगवान से प्रेम हो जाता है। वहीं दूसरी ओर प्रेम आत्मा का धर्म है। मोह में मांग होती है, वासना में मांग होती है, जबकि प्रेम केवल देता ही देता है।"

- जिसको आँख दोगे उसको मन देना पड़ेगा। आँख जिसे देखती है मन वहीं चक्कर काटता है।
- इस भाव को सदैव स्मरण रखना चाहिये कि संसार हमसे प्रतिदिन छूट रहा है। इतना समझ लो कि इस जग से तुमको जाना ही होगा। यदि कुछ वासनायें शेष रह गयी है तो उनके लिये फिर से आना होगा।
- इच्छाओं की पूर्ति से सुख मिलता है। पुण्य अगर है तो इच्छाओं की पूर्ति होती चली जाती है। परन्तु वास्तव में इच्छाओं का त्याग कभी भी नहीं हो पाता। एवं न ही कामनायें छूटती है। सुख बना रहे यह स्पृहा भी नहीं जाती। सबसे मजेदार बात यह है कि "प्रतिक्षण अपना छूट रह रहा है, फिर भी मेरा मान रहा है। और फिर जहां तक मेरा मानोगे वहीं तक दुख है।" वस्तुत: मानव जीवन का चरम लक्ष्य केवल सुख, दु:ख भोगना नहीं, अपितु उनके बंधन से मुक्त होना है।
- भगवद् प्राप्ति के मार्ग पर जाने के कुछ सरल उपायों पर दृष्टि डालते है।

- मन को शान्त रखना ही ईश्वर के गृह पर हमारा प्रवेश है।
- ध्यान के बिना ईश्वर की अनुभूति नहीं होती है। (मन को निर्विषय करना ध्यान है और मन के विकारों को त्यागना ही स्नान है।)
- मानसिक पापों का भी परित्याग करो। क्योकिं मन में बसी हुयी वासना भी दुष्कर्म कराती है।
- सात्विक आहार से सात्विक गुणों की वृद्धि होती है। सत्वगुण के बढ़ने से बुद्धि स्थिर होती है।
- परदोष दर्शन, भगवद् प्राप्ति में महान विघ्न हैं।
- संसार में रहो पर अपने में संसार को मत रखो।
- अपने बल को भगवान के बल से अलग मत मानो।
- एकान्त में उपदेशों एवं ज्ञान पर मनन व चिन्तन आवश्यक है। जितना सत्संग करे उससे दुगना मनन करें।
- प्रतिदिन यथा साध्य कुछ न कुछ दान अवश्य करें इससे त्याग की प्रवृत्ति जागेगी।
- जगत में किसी भी पदार्थ से इतना स्नेह न करें कि वह प्रभु भक्ति में बाधक बन जाय।
- भगवान को अपने से दूर न माने, संसार में अपना कुछ न मानो।
- सुख की तृष्णा का त्याग किये बगैर भगवत मार्ग पर चलना निराधार है।
- राग एवं द्वेष छोड़ देने पर निज मन को आधीन बनाने वाले स्वाधीन विचार आने लगेंगे।
- इस जग को भव सागर कहते है। सन्तों के दर्शन से एवं प्रभु को पाने की आकांक्षा से ही इस जगत में निर्भय होकर सुख-दु:ख की धाराओं में तैर सकेंगे।

- प्रेम को पदार्थो से मुक्त करना होगा अर्थात् विनाशी पदार्थो से मुक्त करना है। हमें इस बात का सदैव ध्यान रखना है, कि हम जिससे प्रेम करते है क्या वह सदा रहेगा? ?

- ज्ञान स्वरूप चेतन में इस बात का सदैव ध्यान रखना है कि प्रेम, ज्ञान, आनन्द, एवं सत् सदैव परमात्मा का स्वरूप है।

- ज्ञान में पदार्थो को भरने से हम उसके अधिकारी बन गये, मोही बन गये, लोभी बन गये एवं अभिमानी बन गये। जबकि हमें ज्ञान में केवल आत्मज्ञान का चुनाव करना चाहिए था।

- चूंकि प्रेम ही परम प्रकाश है अतैव जब कोई संसार के प्रेम से ऊपर उठता है तब वह परमात्मा को जानने की दिशा में पहला कदम बढ़ाता है।

- परमात्मा की बुद्धि गणेश है, परमात्मा के चक्षु सूर्य है, परमात्मा का मन चन्द्रमा है, परमात्मा की आत्मा शिव है, परमात्मा की शक्ति प्रकृति है।

- मन रहेगा तो सारे द्वन्द्व जैसे- सुख-दु:ख, आलाप-विलाप, प्रलाप-अनुलाप, उन्माद-विषाद, आदि महसूस करेंगे। इन्हे ही दृष्टा भाव में देखने की कला सीखनी है।

- शरीर है तो उसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह आते जाते ही रहेगें। इन्हे भी दृष्टा भाव में देखना है।

- मन में ध्यान हो, हृदय में प्रेम, मुख में उस प्यारे का नाम हो, शरीर में स्फूर्ति हो तो हम उस परमात्मा तक पुहँच ही जायेगे।

- बीज में जैसे तेल होता है- दूध में घी एवं लकड़ी में अग्नि होती है- वैसे ही इस शरीर में आत्मा है। और बिना "जिज्ञासा" के वह नहीं मिलेगी।

- ध्यान का सच्चा अर्थ है- मन की स्थिरता। मन में उठे विचारों के साक्षी को देखने का नाम ही ध्यान है।

- धर्म का अर्थ है- मार्ग। अनेक पथ हैं-सभी अच्छे हैं। उस परमात्मा के देवालय में कोई जाति, धर्म, परम्परा नहीं पहुँच सकती। उस सर्वव्यापी परब्रह्म का हर जगह केन्द्र है और कोई परिधि नहीं, उसका वृत्त अनन्त है।

- जगत गुरू शंकराचार्य कहते है कि संसार मिथ्या है। निम्बार्काचार्य कहते है कि संसार नित्य है। रामानुजाचार्य कहते है कि संसार सत्य है। माधवाचार्य कहते है कि संसार आभास है। कुछ लोग कहते है कि संसार मिथ्या भी है एवं सत्य भी है। संसार दो प्रकार का होता है। एक तो बाहरी जगत जो कि परमात्मा के द्वारा बनाया गया है, वह सत्य है। सदैव एक सा है। और जो भीतरी जगत है वह वासनात्मक जगत है वह हम लोगो द्वारा बनाया गया है। बाहर का जगत सत्य है एवं भीतर का जगत मिथ्या है। भीतर का जगत हर क्षण बदल रहा है। भीतर का जगत यदि समाप्त हो जाये तो आध्यात्मिक यात्रा की शुरुआत होती है।

- संसार वह है जो सदैव बह रहा है। यह भी हमारा भ्रम मात्र ही है कि प्रभु हमसे अमुक कार्य करा रहे है। वस्तुत: प्रभु किसी से कार्य करवाते नहीं है, अपितु शक्ति देते हैं-आँखों को देखने की, कानों को सुनने की, प्राणपिण्डों को सूँघने की, जिह्वा को स्वाद की, त्वचा को स्पर्श की एवं बुद्धि को विवेकपूर्ण निर्णय लेने की। वह निर्णय को सही और गलत की कसौटी पर नही कसता क्योंकि वह सिर्फ दृष्टा है। कर्म बनना जब बंद हो जाता है, तब वह कर्म करने के लिये कोई प्रेरणा नहीं देता। जब तक शुभ और अशुभ, पाप और पुण्य कर्म बनेगे तभी तक वह कर्म को आगे बढ़ाने के लिये प्रेरणा देता है। जब जीव, शुभ और अशुभ करना बंद कर देता है तब वह साक्षी होकर कार्य करता है। अनन्त पाप पुण्य संचित है तो भोगना निश्चित है, क्योंकि प्रारब्ध कर्मो का क्षय भोग से होता है।

- हम परम सत्ता की अनूभूति दो रुपों में कर सकते है। "निर्गुण स्वरुप में बोध होता है, वहीं सगुण में उपासना होती है।" जहां एक ओर सगुण दिव्य होता है वहीं निर्गुण में प्राकृतिक गुण नहीं होते। रूप गोस्वामी और जीव गोस्वामी के अनुसार जीव को पित्त रोग है वह नाम रूप, गुण, लीला, रूपी मिश्री के खाने से ही समाप्त होगा। जब पित्त विकार होता है तब कोई भोजन अच्छा नहीं लगता है। जब विकार ज्यादह हो, तो नाम रुपी मिश्री ही खाता रहे इसी से जीवन परिवर्तित होगा।
- ''मत पिण्डे, तत ब्रह्माण्डे''। बाहर हिमालय है, अन्दर मेरू दण्ड है (मेरू = पर्वत), बाहर, आकाश है, अन्दर - चिदाकाश है। बाहर, गंगा, यमुना, सरस्वती है, अन्दर इडा, पिंगला, सुसुम्ना है। बाहर हवा है, अन्दर प्राण हैं। अन्दर की मात्रा अभी इसी क्षण शुरु हो सकती है। चुनाव तुम्हारा है।
- केवल एक ही ज्ञान प्राप्त करना है - ''मैं यह शरीर नहीं हूँ''
- जैसे ही पाने की कोशिश करी - तो अहंकार दृण/पाना है।
- बंधन केवल 'मैं' का है। मैं - मैं से यह कहे कि मैं छोड़ दो - तो केवल 'मैं' मजबूत होता है। तो कोशिश को होने में ब्वदअमतज करना है होना इसी क्षण सम्भव है। कोशिश - में कई जीवन लगने की संभावना है।

आध्यात्मिक लक्ष्ण क्या है?

- मुक्ति, कर्म (निष्काम) से ज्ञान और ज्ञान से मुक्ति

★ **स्मृतियां भूत की होती है, संकल्प भविष्य के होते है। भोग वर्तमान की सीमित वस्तु में होता है।**

★ संकल्प में विवेक की जागृति होने से संकल्प की पूर्ति नहीं होती। संकल्प को जगाना है दबाना नहीं।

★ **हम ही इस शरीर से पहले अनादि थे। हम ही इस शरीर में रहकर अखण्ड है। हम ही इस शरीर के बाद अनंत होंगे। इसलिये हमी आदि, अनादि, अखण्ड, अनंत है।**

★ चिन्तन के बाद जब व्यक्ति शान्त हो जाता है तब वह स्वयं बोधवान बन जाता है और साक्षी शेष रह जाता है।

★ दर्पण में जो दिखाई दे रहा है वह प्रतिबिम्ब होता है इसलिये प्रकृति के दर्पण में जो दिखाई दे रहा है वह भी प्रतिबिम्ब है। प्रतिबिम्ब सदैव अपने होते है इसलिये हमारे ही अन्दर कोई ऐसे बिन्दु है जिनका कि प्रतिबिम्ब सूर्य तारे आदि है। सूर्य चांद तारे और शरीर इत्यदि ये सब मन में रहते हैं। अतः अणु में बिभु है।

★ भगवद प्राप्ति, भगवद प्रेम से होती है। भगवद् प्रेम, भगवद् ज्ञान से होता है। भगवद् ज्ञान, गुरू कृपा से प्राप्त होता है। भगवद् कृपा प्राप्ति के लिये सद्गुरू शरण में जाना पड़ेगा।

★ यदि साधना के उपरान्त हम थकावट महसूस करते है तो यह वास्तविक साधना नहीं हैं बल्कि यह श्रम है श्रम का वेतन सारा संसार दे रहा है यदि हम ऐसा कर रहे है तो हम वेतन भोगी है।

★ दृश्य मात्र सम्पूर्ण जगत माया का कार्य होने से छणभंगुर, नाशवान, जड़ और अनित्य है तथा जीवात्मा नित्य, चेतन निर्विकार और अविनाशी एवं शुद्ध बोध स्वरूप सच्चिदानन्द धन परमात्मा का ही सनातन अंश है। इस प्रकार समझकर सम्पूर्ण मायिक पदार्थो के संग का सर्वथा त्याग करके परमपुरूष परमात्मा में ही एकीभाव से नित्य स्थित रहने का नाम उसको तत्व से जानना है।

★ साक्षी की सत्ता को स्वीकार करना सत् है। साक्षी के सौन्दर्य को स्वीकार करना चेतन है। साक्षी से ही आनन्द का बोध होता है। यही वेदान्त का

सिद्धान्त है। यही अपना स्वरूप है यही जीवन है। यही प्राणी मात्र का लक्ष्य है। यही सत्–चित् आनन्द स्वरूप है।

★ **भोग, स्मृतियाँ और संकल्प - भोग वर्तमान की सीमित वस्तु में होता है। स्मृतियाँ भूत की होती है। संकल्प भविष्य के होते है। भोग स्मृतियों एवं संकल्प विकल्प से परे झांकने की चेष्टा आत्म तत्व को जानने की दिशा में पहला कदम है।**

★ जीवन तीन तरह की धाराओं में बह रहा है। इच्छा, परइच्छा, अनिच्छा

अ) अनिच्छा : हम एक पुल से गुजर रहे थे कि किसी ने ढेला मार दिया तो हमे बहुत दु:ख हुआ। दु:ख परिणाम होता है हमारे पाप कर्मो के कारण। पूर्व जन्म के पाप कर्मो के फल स्वरूप इस जीवन में दु:ख आते है। हमे कोई अचानक रोग आगया , वह हमारे पूर्व जन्म के पाप कर्मो के कारण अनिच्छा की धारा में आता है। यद्यपि कोई रोग नहीं चाहता है, इस लिये ढेला लगना भी अनिच्छा की धारा में है। इससे सिद्ध होता है कि आघात, दुर्घटना, रोग इत्यादि हमारे पूर्व जन्मो के पाप कर्मो के कारण आते हैं– अनिच्छा की धारा में

ब) परइच्छा :– कुछ कार्य परइच्छा से होते है जैसे - गड़े धन का मिलना, लाटरी का खुलना अचानक द्रव्य लाभ होना, दूसरों से जायदाद का मिलना। इनसे हमे सुख की प्राप्ति होती है। ये हमारे पूर्व जन्म के पुण्य कर्मो के परिणाम होते है। हम चाहें तो हमे कोई जायदाद नहीं लिख देगा– परइच्छा में लिखी गयी थी। इससे सिद्ध होता है कि हमारे पूर्व जन्म के पुण्य कर्मो के कारण गड़े धन का मिलना, लाटरी योग, अकस्मात धन की प्राप्ति और जायदाद का मिलना, बनता है। यह सब कुछ पर इच्छा से घटता है हमारी इच्छा से नहीं।

स) इच्छा - इच्छा की धारा में हमने कोई व्यापार किया और हमें धन हानि हुयी जिससे हमें बहुत दु:ख हुआ। दु:ख परिणाम होते है हमारे पूर्वजन्मों के पापकर्मो से। हमने एक व्यापार किया इच्छा की धारा में और उसमें हमें धन लाभ हुआ, जिससे हमें सुख की प्राप्ति हुयी। सुख हमें पूर्व जन्म के पुण्यों के कारण मिलते है इससे सिद्ध होते है कि इच्छा की धारा में किये गये व्यापार में हमें लाभ और हानि पूर्व जन्म के पुण्य कर्म और पाप कर्मो के कारण होती है।

★ चेतना, मन, बुद्धि, वृत्ति एवं विवेक में अन्तर सीखना होगा।

★ चेतना जहां चैतन्य रहती है वहां वह साक्षी रहती है। चेतना जिसके प्रति चैतन्य होती है वहाँ वह सजगता बन जाती है। वहीं विवेक पूर्ण जागृति का नाम है। वस्तुत: जो शुद्ध चेतन का प्रकाश है वही विवेक कहलाता है, भेद नहीं, संघर्ष नहीं। शुभ का, सत्य का और सौन्दर्य का सहज प्रवाह है वह।

अ) वृत्ति पीछे रहती है, विवेक आगे रहता है, बुद्धि मध्य में रहती है।

ब) जागृत में मन की प्रधानता होती है एवं स्वप्न में चित्त की प्रधानता होती है। सुसुप्ति में अज्ञान वृत्ति की प्रधानता रहती है, तुरीयावस्था में ज्ञान वृत्ति की प्रधानता रहती है। जहाँ वृत्ति का ही अभाव हो जाय, वहाँ परमात्मा की ही प्रधानता रहती है।

स) वृत्ति सहज ही अंधी है, वह निद्रा रूप है। जहां न शुभ है और न अशुभ, 3. इसमें कोई भेद नहीं संघर्ष नहीं, अंधी वासनाओं का सहज प्रवाह हैं वह।

द) तबतक वृत्ति खड़ी है तब तक संसार भी खड़ा है वृत्ति के शान्त होने पर संसार भी शान्त हो जाता है और तब परमात्मा के दर्शन होते है। वस्तुत: चित्त वृत्ति के शान्त होने पर ही आत्मदर्शन सम्भव है।

य) जिसकी वृत्ति ब्रह्म को ही देखे वह जागृत, जिसकी वृत्ति ब्रह्म का ही चिन्तन करे, वह स्वप्न जिसकी वृत्ति शान्त हो वह सुषुप्ति और जिसकी वृत्ति निवृत हो गयी हो वह तुरीय निवृत्ति वृत्ति में ही पूर्ण रूप से निहित है।

र) जिस प्रकार की चित्त वृत्ति रहेगी उसी प्रकार का चिन्तन स्वत: चलता रहेगा। कामाकार वृत्ति में काम का ही चिन्तन सदैव बना रहता है लोभाकार वृत्ति में लोभ का चिन्तन सदैव बना रहा है। तथा भगवदाकार वृत्ति में भगवान का ही चिन्तन, स्मरण, गुणगान, कीर्तन एवं जप आदि का चिन्तन बना रहता है। ब्रह्माकर वृत्ति में ब्रह्म का ही चिन्तन बना रहता है।

ल) बुद्धि, न जागृत है, न निद्रा है। अर्ध मूर्च्छा मात्र है, यह दहलीज है, जिसके भीतर एक अंश चेतन है और दूसरा अंश अचेतन है। इसी से भेद भाव तथा शुभ अशुभ की उत्पत्ति होती है इसमें वासना भी है और विचार भी है।

व) मन – जब आराध्य के साथ दौड़ लगायेगा तभी उद्धार होगा।

जेहि तुरंग पर राम विराजे, गति विलोक खग नायकु वाजे।

काहि जाइ सब भांति सुहावा। बाजि वेसु जनु काम बनावा।।

गोस्वामी जी राम की लीलाओं का स्मरण कराते है और यह विश्वास दिलाते हैं कि श्री राम जी भले ही आज प्रत्यक्ष रूप में दृष्टि गोचर न हो रहे हो पर उनका नाम प्रत्यक्ष रूप से विद्यमान है और वे सभी लीलायें आज भी हमारे जीवन में सम्पन्न हो सकती है जो त्रेतायुग में हुयी थी। श्री राघवेन्द्र ने विश्वामित्र के हित के लिये ताड़का का बध किया, मारीच और सुबाहु पर भिन्न-भिन्न पद्धतियों से प्रहार किया। मारीच को बदलने के लिये प्रभु बिना फल के वाण का प्रयोग करते है। मारीच की समस्या सचमुच व्यक्ति के जीवन की सबसे बड़ी समस्या है हम सबके जीवन में मारीच विद्यमान है। हमारा और आपका मन ही मारीच है। मारीच का वर्णन यह कह कर किया जाता है कि वह भेष बदलने में निपुण था, मृग के समान चंचलता से मन का ही बोध होता है हमारा आपका मन ही दिन रात न जाने कितने भेष बदलता है। मानस में मन के कई प्रतीक है। मन के प्रतीकों में मारीच सबसे प्रबल प्रतीक है।

योग के अष्टांग मार्ग को भी हृदयंगम करना चाहिये।

अ) यम – यम में सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, और अकाम विशेष रूप से मानने हैं।

- सत्य – वस्तुत: सत्य के दो विभाग है– 1. पारमार्थिक 2. व्यवाहारिक
- पारमार्थिक सत्य – परमार्थिक सत्य वही है जिसकी सत्ता में प्राण, अन्त:करण, इन्द्रियाँ, पंचभूत अथवा माया का समस्त विस्तार हुआ है। साधना पारमार्थिक सत्य है।
- व्यवहारिक सत्य – विचार, भाव और क्रिया जिसमें हो, वह व्यवहारिक सत्य है।
- अहिंसा – अहिंसा का अर्थ है किसी को दु:ख न देना। न अपने को सताना है। तथा ज्ञान पूर्वक प्रेम से किसी की पीड़ा दूर करना और किसी व्यक्ति पर अधिकार न रखना ही उदारता है। और वह उदारता ही अहिंसा है।
- अपरिग्रह – अपरिग्रह का अर्थ है संचय की प्रवृति न होना। किसी अन्य की वस्तु अथवा अपनी वस्तु पर अधिकार की भावना न रखना ही अपरिग्रह है।
- अचौर्य – किसी वस्तु को न चुराना ही अचौर्य है। किसी दूसरे की अथवा अपनी शक्ति को परमात्मा की न मानकार अपनी ही मान बैठना चोरी है। किन्तु सब कुछ परमात्मा का ही स्वीकार करना अचौर्य है।
- अकाम – समस्त कामनाओं को त्याग ही अकाम कहा गया है। इन्द्रियों के द्वारा परमात्मा की ही शक्ति बाहर गमन करती है उस स्थिति का नाम काम

है किन्तु जब परमात्मा की शक्ति परमात्मा की ही ओर प्रवाहित होती है तब उसका नाम अकाम है।

ब) नियम – नियम में शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय ईश्वर शरणागति मुख्य रूप से पालने योग्य है।

- नियम के अन्वर्गत विवरण – 1 – शौच जो परमात्मा को बाहर भीतर सर्वत्र अनुभव करता है वह स्वयं ही पवित्र है। उस बाहर भीतर की पवित्रता को ही शौच कहते है। 2– सन्तोष – परमात्मा पर भरोसा करके निष्काम कर्मो में लगे रहना और किसी प्रकार की कामना न करना सन्तोष है। जो प्राप्त है उसी में सुख मानना और सभी अवस्थाओं में प्रसन्न रहना सन्तोष है यही सुख रूप है। इससे भिन्न अथवा किसी भी स्थिति में दु:ख मानना असन्तोष कहलाता है, संतोष से ही विवेक की प्राप्ति होती है। 3– तप – शरीर, प्राण इन्द्रियाँ तथा मन को शुद्ध रखते हुये धर्म का आचरण करना ही तपस्या है। जो व्यक्ति सुख दु:ख को सम मानता हुआ निष्काम कर्म में आलस्य नहीं करता और धर्म मार्ग में होने वाले कष्ट को कष्ट नहीं मानता वही मनुष्य सच्चा तपस्वी है। 4– स्वाध्याय – वेद, शास्त्र, उपनिषद आदि विवेक उत्पन्न करने वाले ग्रान्थों का पठन–पाठन, मनन आदि ही लौकिक दृष्टि से स्वाध्याय है। आध्यात्मिक दृष्टि से तो अपना अध्ययन करना ही स्वाध्याय है अथवा अपने मन का अध्ययन करो कि वह किधर जाता है। धीरे–धीरे वह अध्ययन ही स्वाध्याय बन जायेगा। 5– ईश्वर शरणागति या ईश्वर प्रणिधान – ईश्वर प्रणिधान का अर्थ मन, वाणी और कर्म से अपनी समस्त वृत्तियों को समर्पित कर देना है। शरीर इन्द्रिय, अन्तकरण, मन और प्राण तथा उनके द्वारा होने वाले कर्मो और परिणामों का ईश्वर में समर्पण हो तो ईश्वर प्रणिधान समझना चाहिये।

स) आसन – अभ्यास के लिये सुख पूर्वक वैठना आवश्यक है। यदि बैठने में उचित स्थिति न होगी तो मन में अनेक प्रकार संकल्प, विकल्प बनते बिगड़ते है, साधना में मन नहीं लगेगा। वस्तुत: मन में किसी प्रकार की वृत्ति न रखना ही श्रेष्ठ आसन है।

द) प्रत्याहार – इन्द्रियों का आपने विषयों के साथ संम्बन्ध विच्छेद करके चित्त के स्वरूप में तदाकार हो जाना ही प्रत्याहार कहलाता है। यह तभी सम्भव है जब चित्त की चंचलता दूर हो। प्रत्याहार की सिद्धि होने पर इन्द्रिया पूर्ण रूप से वशीभूत हो जाती है वस्तुत: चित्त वृत्ति पर किसी प्रकार की वासना का प्रभाव न पड़े यही प्रत्याहार है।

य) धारणा – चित्त वृत्ति को वाह्य विषयों से हटाकर ध्येय विषय पर ठहराना ही धारणा है। अथवा स्वरूपाकार वृत्ति का बार–बार निर्माण होना धारणा कहलाता है। चित्त की वृत्ति को ठहराने का अभ्यास सिद्ध हो जाय उसे धारणा कहते है।

र) समाधि – जब चित्त का निज स्वरूप शून्य हो जाय और केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीति रहे वह अवस्था समाधि कहलाती है। अर्थात जब स्वरूपाकार वृत्ति पूर्ण रूप से शान्त अथवा निवृत हो जाय वही समाधि है। समाधि में यह भान नहीं रहता, कि मैं ध्यान कर रहा हूँ। उस समय चेतना पूर्ण रूप से जाग्रत हो जाती है।

व) ध्यान – ध्यान तब तक रहता है जब तक कि चित्त वृत्ति ध्येयाकार रहती है। ध्यानावस्था टूटने पर वृत्ति उस आकार की नहीं रहती। अभिप्राय यह है कि चित्त वृत्ति ध्यान वही है जिसमें चित्त वृत्ति ध्येय के स्वरूप के आकार की ही गयी है।

- अवस्था अनुभव – जाग्रत अवस्था में स्थूल शरीर, स्थूल संकल्प और स्थूल संसार की प्रमुखता होती है। स्वप्नावस्था में सूक्ष्म शरीर, सूक्ष्म संकल्प और सूक्ष्म संसार की प्रमुखता होती है। सुषुप्ति अवस्था में कारण शरीर, कारण संकल्प और कारण संसार की प्रमुखता होती है। तुरीयावस्था

में महाकारण शरीर, महाकारण संकल्प और महाकारण संसार की प्रमुखता होती है। किन्तु जब प्राणी इन चारो अवस्थाओं से पार हो जाता है तब केवल अपने ही विद्यमान रहने का बोध होता है ज्ञान की यही पराकाष्ठा है।

- ध्येयाकार वृत्ति – ध्येयाकार वृत्ति के लिये प्रत्येक क्षण जप को चलते रहना चाहिये, क्योंकि जप करते रहने से ध्येय की छवि का स्मरण निरन्तर बना रहता है।
- प्रार्थना – प्रभु के लिये हृदय में जो भाव उठे उसी में निमग्न हो जाना ही प्रार्थना है न कि लिखे हुये शब्दों को बार-बार दोहराना।
- यम नियम आदि का अभ्यास इसलिये किया जाता है ताकि मन की चंचलता दूर होकर उसमें स्थिरता आ जाय। प्रत्याहार से ध्यान तक का अभ्यास क्रमशः कामाकार, लोभाकार, मोहाकार,भोगाकार आदि वृत्तियों के शमन के लिये किया जाता है। उसके पश्चात आत्माकार या ब्रह्माकार वृत्ति होती है। तब समाधि पूर्ण होती है।
- जैसे मन की शुद्धि के लिये यम नियम आवश्यक है वैसे ही शारीर उन्नति के लिये आसन, प्राणायाम तथा योग आवश्यक है। और मानसिक उन्नति के लिये सेवा और प्रेम आवश्यक है। बौद्धिक उन्नति के लिये विवेक आवश्यक है। आत्मबोध के लिये ज्ञान की अपेक्षा होती है। यही परम योग है।
- जिन सांसारिक कार्यो में विषयाकार वृत्ति वाले मनुष्य जागे रहते है उसमें योगी जन सोते है। जिन समयों में समस्त मनुष्य सोते है उनमें योगी पुरूष जागते रहते है। वस्तुतः जागे हुये वही है जिनकी चित्त वृत्ति आत्माकार अथवा ब्रह्माकार हो चुकी है।
- त्रिकालज्ञ – भूत, भविष्य और वर्तमान तीन काल है जो इन तीनों में अपने आप को ही देखता हो वह त्रिकालज्ञ है किन्तु जो संसार को देखता है वह अज्ञानी है।
- प्राणायाम – आसन के स्थिर होने पर प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है। जब आसन के द्वारा परमात्मा में मन लगजाता है तब प्राणायाम तीन प्रकार के अभ्यास से सिद्ध होता है- पूरक, कुम्भक एवं रेचक।

  अ) पूरक – का अर्थ है –बाहर से भीतर श्वांस की खींचना।

  ब) कुम्भक – का अर्थ है- श्वांस को भीतर रोके रखना

  स) रेचक का अभिप्राय है- श्वांस को बाहर निकाल देना।
- पूरक-स्वरूप की सजातीय वृत्ति का साथ देना पूरक है। रेचक – विजातीय वृत्ति को विदा करना ही रेचक है। कुम्भक – मैं केवल चैतन्य सत्ता हूँ, यही कुम्भक है।

अध्याय – 2 ➤➤➤

अध्यात्मिक प्रश्नोत्तरी

(कठिनप्रश्न - सरलउत्तर)

● अध्यात्म का सार क्या है?

राजा जनक बहुत विद्वान थे। अष्टावक्र जी ने जनक को कोई शास्त्र विधान की विधियाँ नही बताई, यम-नियम साधने का नहीं कहा। न ही आसन, मुद्रा, प्राणायाम, सिखाया। न ही पूजा- पाठ की शिक्षा दी। किसी भी प्रकार की क्रिया, फल की आकाँक्षा लिये रहती है, अपेक्षायें जुड़ी रहती हैं। हर क्रिया की प्रतिक्रिया होती है और उसका निश्चित फल मिलता ही है। इसी से चौरासी लाख योनियों मे बार-बार आवागमन होता है। अष्टावक्र जी ने समाधि का अनुष्ठान भी बाधक बताया है, उनका सारा उपदेश जागरण का है। महर्षि अष्टावक्र ने सद्गुरू कृपा को ही सर्वोच्च मानकर उसे चेतना कहा है। 'अष्टावक्र-गीता' का आरम्भ ही राजा जनक के तीन प्रश्नो से होता है-

1. ज्ञान कैसे होता है?
2. मुक्ति कैसे होती है?
3. वैराग्य कैसे होता है?

इन्हीं तीन प्रश्नों का उत्तर "आत्म ज्ञान" है।

अष्टावक्र जी ने तीन ही वाक्यों मे उन तीन प्रश्नों का समाधान कर दिया और इसी को अध्यात्मसार कहते हैं।

1. अध्यात्मिक उपलब्धि हेतु समस्या 'मन' की है अर्थात किसी भी प्रकार के बन्धन या आसक्ति रहित मन' का होना ही वैराग्य है।
2. इसी 'आसक्ति त्याग' से 'आत्म ज्ञान' प्राप्त होता है अर्थात शरीर से 'आत्मा' का प्रथक अनुभव मिलता है, और
3. 'आत्म ज्ञान' से ही मुक्ति होती है, जीवन-मरण के आवागमन का ज्ञान हो जाता है, यही सर्वोपरि है।

● स्थित प्रज्ञ कौन है ?

- जिसका मोह सर्वथा नष्ट हो गया है, जो कामना रहित है, ऐसा पुरूष स्थित प्रज्ञ कहलाता है। ऐसा स्थित प्रज्ञ बह्मवेत्ता, ब्रह्म में स्थित रहता हुआ न तो प्रिय को पाकर हर्षित होता है और न अप्रिय को पाकर उद्विग्न ही होता है। जिनके पाप सर्वथा नष्ट हो चुके हैं, जो सब प्राणियों के हित में संलग्न है तथा जिसके सभी संशय नष्ट हो चुके है, ऐसे महापुरूष ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। उनके सब ओर ब्रह्म ही बर्तता है, ऐसे कामना रहित (निष्काम) पूर्णकाम पुरूष केवल परमात्मा को ही चाहने वाले है। उनके प्राण उत्क्रमण नहीं करते। ऐसे महापुरूषों का सूक्ष्म शरीर ब्रह्मलोक में ॐ कहता हुआ ऊपर उठ जाता है और ब्रह्म में ही लीन हो जाता है। जिस बुद्धि में स्थिरता है अर्थात जो बुद्धि एक जगह टिक गयी अर्थात निश्चियात्मिका बुद्धि ही स्थित प्रज्ञ है। जब हम किसी वस्तु को देखते है तो दृष्टि उस वस्तु पर होती है, न देखने पर दृष्टि पुनः अपने गोलक में होती है। यदि हमारा मन न हो तो हम उस वस्तु को नहीं देखेगे। देखने से यह सिद्धांत बना कि मन जहां होता है दृष्टि वहीं खुलती है। मन जब स्वरूप चितन करेगा अर्थात स्वरूप पर होगा तो दृष्टि वहीं पर खुलेगी। दृष्टि के अपने स्वरूप में खुलने को ही दिव्य दृष्टि कहते है मन के इस तरह से अपने में विलीन कर ले, यही एक स्थित प्रज्ञ की भूमिका है।

● ब्राह्मण कौन है ?

- जो शोक, मोह, भूख, प्यास, बुढापा और मृत्यु से परे है वह परमात्मा है, ऐसे इस परमात्मा को जानकर जो, समस्त कामनाओं से विरक्त होकर भिक्षा से निर्वाह करने वाले मार्ग से विचरता है इसके बाद वह पाण्डित्य को भलीभाँति समझ पर बाल्य भाव में स्थित रहने की इच्छा करे, फिर उससे भी उपरत होकर मुनि हो जाय, फिर वह मौन और अमौन दोनों से उपरत होकर ब्राह्मण हो जाता है अर्थात ब्रह्म को भलीभाँति प्राप्त हो जाता है।
- जो सत-चित-आनन्द स्वरूप है- वही ब्राह्मन है।

● ब्रह्म कौन है?

- जगत प्रकाश्य प्रकाशक रामू। मायाधीश ज्ञानगुण धामू ।।

  "सो तिहुँ काल एक रस रहहीं। "
- जो जीवात्मा में रहने वाला, जीवात्मा के भीतर है जिसे जीवात्मा नहीं जानता, जीवात्मा जिसका शरीर है और जो उसके भीतर रहकर जीवात्मा का नियमन करता है। वह तुम्हारा अन्तर्धमी अमृत है, और ब्रह्म है।
- नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, स्वभावं। सर्वज्ञ सर्वशक्ति समन्वितं ब्रह्म।।
- ब्रह्म - सारी शक्तियाँ जिसमें हैं।
- सर्वज्ञ है, सर्व दृष्टा है, नियंता है, साक्षी है। सदानन्द है। चिदानन्द है, और सत चित आनन्दमय है और- **"रसो वै सः"** वो रस रूप है- और जो सम्पूर्ण अनन्त चेतना का जोड़। ऐसे अनन्त को कोई कैसे परिभाषित करें ?

● पूजा किसकी करें

- श्रीमदभवद्गीता और अन्य योगशास्त्रो के अनुसार एक परमात्मा और उसकी प्राप्ति की एक निर्धारित क्रिया के स्थान पर असंख्य पूजा-पद्धतियाँ प्रचलन मे हैं। कोई कहता है- गाय धर्म है, कोई कहता है पीपल धर्म है, तो कोई वर्ण और आश्रम का महत्व बताता है। तो फिर पूजा किसकी करें ?

दुनिया मे सबसे अधिक धार्मिक, भजन- चिन्तन करनेवाला, पूजा- पाठ करने वाला हिन्दू ही है(परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि धर्म के प्रति इतना आस्थावान् हिन्दू जीवन के अन्तिम समय तक यह निश्चय ही नहीं कर पाता कि इष्ट कौन है ? हम किसकी पूजा करके कल्याण को प्राप्त हो सकते हैं ? इसके मूल मे देखा तो बहुदेववाद का प्रचार ही एकनिष्ठ होने मे सबसे अधिक बाधक सिद्ध होता है। एक ही परिवार मे दस सदस्य हैं, सबके देवता अलग-अलग हैं। कोई हनुमान का भक्त है तो कोई शिव का, कोई देवी का तो कोई किसी अन्य देवता का। अपने-अपने देवी-देवताओं के लिये लोग एक दूसरे से झगड़ा भी करते देखे जाते है। किसी को यह मालूम नहीं कि शाश्वत कौन है ? किसकी उपासना से शाश्वत धाम की प्राप्ति होगी ? अनेक देवी-देवता हमारे मन मे इस प्रकार समा गये हैं कि अन्त समय तक हम किसी पर विश्वास ही नही टिका पाते। इस तरह भ्रान्ति अन्त तक बनी रहती है, तो भला **'एक मन्दिर दस देवता क्यों कर बसे बजार।'** हृदय एक मन्दिर जो एक परमात्मा को अपने अन्दर स्थान दे सकता है, उसमे अनेक लोगों को स्थान नहीं दिया जा सकता। 'दुविधा मे दोऊ गये, माया मिली न राम।' अतः हृदय- देश में किसी एक को बैठाना ही उचित होगा।

मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।

नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः।।

गीता में कृष्ण कहते हैं- अर्जुन! मुझे प्राप्त होकर पुरूष क्षणभंगुर, दु:खों की खान पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता बल्कि वह पुरूष मुझे प्राप्त होता है। जो पुनर्जन्म मे आता है वह दुखो: की खान है। केवल मुझे प्राप्त होकर उसका पुनर्जन्म नही होता बल्कि **'स्थानं प्राप्सयसि शाश्वतम्'** वह शाश्वत, सदा रहने वाला स्थान, परमधाम को पा जाता है।

श्रीरामचरितमानस के आलोक मे विचार करें कि इष्ट कौन है? भजन किसका करना चाहिये?

'मानस' जिसके हृदय की उपज है उन भगवान शंकर का निर्णय है-

धर्म परायन सोई कुल त्राता। राम चरन जा कर मन राता।।

नीति निपुन सोई परम सयाना। श्रुति सिद्धान्त नीक तेहिंजाना।।

सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत।

श्री रघुबीर परायन, जेहिं नर उपज बिनीत।।

वही नीति मे निपुण है, वही विद्वान है, वेदो का सार उसने भली प्रकार पहचाना है, वही कुलीन है जिसका मन एकमात्र राम के चरणो मे अनुरक्त है। अतएव एकनिष्ठ होना भी अनिवार्य है।

● राम कौन है?

जो आनन्द सिन्धु सुख रासी। सो करते त्रैलोकी सुपासी।।

सो सुखधाम राम असनामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा।।

त्रिदेव ब्रह्मा, विष्णु, महेश के नियामक है राम। त्रिदेव तो उपाधि से घिरे है, परन्तु राम तो सब प्रकार की उपाधि से परे केवल समाधि के विषय है उनकी कोई उपाधि नहीं। विशेषण नहीं, कोई आकार नहीं। गुण, अवगुण, हर्ष, विषाद आदि द्वन्दों से सर्वथा विर्निमुक्त, शुद्ध बुद्ध, मुक्त स्वभाव है- श्री राम। वे ब्रह्म है। उस ब्रह्म को जब हम उपाधि से धिरा देखते है तो वह हमें ईश्वर दिखता है और जब उपाधियों से परे उसका साक्षात्कार करते हैं तब वही ब्रह्म हो जाता है यह तो भक्ति की महिमा है कि उस निरूपाधिक निर्गुण निराकार ब्रह्म को भी उपाधि विशिष्ट सगुण साकार ईश्वर बनना पड़ता है। राम अखिल की विश्राम स्थली है। त्रिदेवों की सीमा के पार अनिर्वचनीय रूप है राम का।

"राम नाम निज औषधी, काटहि कोटि विकार"

● प्रात:काल क्या ध्यान करें?

- श्री राम जी के दाहिने पैर के चरण चिन्ह

पुरूष, माल, अरू छत्र शुभ सिंहासन यम दण्ड
चमर, चक्र, अंकुश, मुकुट, सुरत: केतुप्रचण्ड ।

स्वास्तिचिन्ह, अठकोण, श्री, सर, हल, मूसल शेष
पटुक, पद्म, रथ, वज्र जब ऊर्ध्व दाहिने रेख।।

- श्री राम जी के वायें पैर के चरण चिन्ह
- **हंस, चन्द्रिका, त्रोण, धनु, वंशी, वीणा, निशेष, मीन, त्रिवलि, पियूषहृद गोखुर महि, कलशेष।**
- **ध्वजा, जम्बुफल, शशिकला, दरषठकोण, त्रिकोण, गदा जीव सरज् सरित ऊर्ध्व बिन्दु सुठिलोल।**

(निशेष - पूर्ण चन्द्र, चन्द्रिका - चांदनी, दर - शंख, पियूषहृद - अमृत कलश त्रिवलि - तीन रेखाये, कलशेष पाड़ा,शशिकला - अर्थचन्द्र, जीव-जीवात्मा अंगुष्ठ समान चिन्ह)

● भरत कौन हैं ?

''विश्व भरण पोषण कर जोई, ताकर नाम भरत अस होई।''

भरत साक्षात विष्णु हैं। विष्णु का कार्य क्या हैं? चराचर जगत का पोषण करना। जो समस्त प्राणि जगत का और जड़ जगत का पोषण करता है वही भरत है। सचमुच श्री भरत ने राम रूप आनन्द रस का वितरण कर स्थावर जंगम सभी का संषोषण किया है इस लिये भरत विष्णु रूप है। राम की उपाधियों में सिमट भरत श्री राम की कृति हैं और अनुकृति भी।भरत के रूप में राम को कृपा प्रकट हुई है। भरत में राम का प्रेम प्रकट हुआ है। भरत वह रहे है द्वार द्वार से होकर। अवधवासी मिल नहीं पाये, प्रेम की उस धारा में, ठीक उस बूंद की तरह जो नदी में मिल तो गयी है, परन्तु स्वयं एक डिब्बे में बन्द है।

मिले प्रेम पूरन दोउ भाई, मन बुद्धि, चित अहमिति विसराई।

(मन रूपी पीताम्बर, बुद्धि रूपी बाण, अहं रूपी धनुष, चित्त रूपी तूरीण को त्याग कर दिया।)

● मातृ शक्ति क्या है?

जो पराशक्ति समस्त जगत को चैतन्यता प्रदान करके स्वरूप प्रदर्शित करने योग्य बनाती है। सत, चित, आनन्द जिसका स्वरूप है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी जिसकी आस्था करते हैं। जो दयामयी है एवं अपनी सभी सन्तानों पर जिसकी अपार असीम कृपा हो रही है। जिसकी सहायता बिना शिव भी शव तुल्य हैं। उसकी भक्ति, इस संसार से मुक्त होने के लिये सभी को करना चाहिये। ऐसी जगन्माता की भक्ति जो नहीं करता, वास्तव में उसका बड़ा भारी दुर्भाग्य है क्योंकि ऐश्वर्य, मुक्ति, ज्ञान, आदि की दाता वहीं हैं। उस ब्रह्म की चेतन शक्ति ही मातृशक्ति है।

● युग क्या हैं ?

- सतयुग धर्म का,त्रेता संयम का, द्वापर तपस्या का ऐवम कलियुग कर्म का युग है। सतयुग में सतकर्म और धर्म कर्म करने से लाभ होता है। त्रेता में यज्ञ से लाभ होता है। द्वापर में तपस्या और दान वृत्ति से लाभ होता है। कलियुग में जप और सेवा से लाभ होता है ।युग परिवर्तन व्यक्ति का स्वभाव परिवर्तन है। मनुष्य यदि धर्म करने लगे तो उसके जीवन में सतयुग आ जाता है। यदि संयम से रहने लगे तो त्रेता युग में प्रवेश कर जाता है, यदि तपस्या करने लगे तो द्वापर में प्रवेश कर जाता है और यदि जप एवं सेवा करने लगे तो कलियुग में लाभ पा जाता है। इस लिये **"व्यक्ति के स्वभाव परिवर्तन से युग परिवर्तन"** होता है। **"कलियुग मनुष्य का अपना स्वभाव है।"**

● सन्त कौन है?

- जो ईश्वर की सत्ता को कण-कण में स्वीकार करते है वही सन्त है। जो समदर्शी हैं एवं सतमार्ग पर चलना सिखायें अर्थात् आत्मोपलब्धि का मार्ग दिखायें।

● रुप क्या हैं?

"नेत्र के सामने जो साकार है बुद्धि के सामने वही निराकार है।"

रूप तीन प्रकार के हैं -

अ) सगुण साकार

ब) सगुण साकार सविशेष

द) निर्गुण - निराकार निर्विशेष

अ) सगुण साकार :-

यह चर्म चक्षुओं से दिखाई देता है और गुण सहित है।

1. **बन्दौ बाल रूप सोई राम। सत सिधि सुलभ जगत जिस नामू।।**
2. **मंगल भवन अमंगल हारी। द्रबहु सो दशरथ अजर बिहारी।।**

ब) सगुण साकार

सविशेष सगुण हैं पर कुछ विशेष अव्यक्त गुणों को भी धारण किये हैं।

विनु पद चलय सुनय विनु काना। कर बिनु कर्म करहिं बिधि नाना।।

आनन रहित सकल रसभोगी। बिनु वाणी वक्ता बड़ जोगी।।

तन विनु परस नयन विनु देखा। गध्य घ्राण विनु वास अशेषा।।

अस सब भांति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाहि नहि वरनी।।

स) निर्गुण निराकार

अगुण अखण्ड अनन्त अनादी। जेहि चिन्तहि परमारथवादी।।

नेति नेति जेहि वेद निरुपा । निजानन्द निरूणाधि अनूपा।।

यह अनुभव गम्य होता है। यह सर्व रूपों में समान रूप से समाहित है न कहीं कम है, न कहीं ज्यादा है, न किसी के सापेक्ष है, न किसी के निरपेक्ष है, न कही पतला है, न कहीं मोटा है।

एक अनीह अरूप अमाना। अज सच्चिदानन्द पर धामा।।

● वासना क्या है ?

"भोगे हुये पदार्थो की चिर स्मृति का नाम वासना हैं।"

उदाहरण – खाली शीशी को देख कर खुशबू को महसूस करना वासना है।

अर्थात – वस्तु के अभाव में वस्तु को महसूस करना वासना है। **वासना हृदय में निवास करती है**, जैसे **"उर से सकल वसना भागी।"** वासना में स्मृति होती है। **वासना का सम्बन्ध भूतकाल से होता है।** स्मृति की विस्मृति कर दें तो वासना निवास नहीं करती अन्यथा वासना अनन्त जन्मों तक अपनी पर्ते जमाये रहती है।

● कामना क्या है?

किसी के द्वारा किसी बात को श्रवण करने पर उस वस्तु को पाने की लालसा को कामना कहते हैं **कामना मन में निवास करती है**, जैसे– "मन–कामना सिद्ध नर पावा।" **कामना का सम्बन्ध भविष्य काल में होता है**– जैसे, अमुख स्थान पर अच्छा प्रबचन हो रहा है तो तुरन्त भाव जागृत हुआ सुनने के लिये, पाने के लिये। कामना में भाव होता है।भाव का अभाव कर दें तो कामना मिट जाती है। कामना की उत्पत्ति सुख की आशा में है। एक कामना की पूर्ति दूसरी कामना को जन्म दे जाती है।

● इच्छा क्या है?

किसी वस्तु चर्म चक्षुओं से देखने पर उसको प्राप्त करने की जिज्ञासा को इच्छा कहते हैं। उदाहरण – सुन्दर वस्तु देखी तुरन्त राग हो गया और इच्छा हुयी कि हम ले लें। इच्छा का स्थान नेत्र होता है। **"इसका सम्बन्ध वर्तमान से होता है।"** इच्छा का त्याग कर दें तो वर्तमान अपना प्रभाव नहीं बना पाता है।

(नोट– जिस व्यक्ति पर भूत, भविष्य और वर्तमान का कोई प्रभाव नहीं होता है वह कालातीत कहलाता है और उसमें बरदान देने की क्षमता होती है। जैसे – "कालातीता काली, कमला तू वर दे।") कालातीत पुरूष वासनाओं, कामनाओं और इच्छाओं से रहित होता है। नेत्र के द्वारा इच्छायें प्रवेश करती है, मन के द्वारा कामनायें प्रवेश करती है, हृदय के द्वारा वासनायें प्रवेश करती है।

इच्छायें, वासनाये, कामनायें यदि व्यक्ति को प्रभावित नहीं करती है तो व्यक्ति परम शुद्ध हो जाता है और उसके नेत्र, मन, हृदय पवित्र हो जाते हैं।)

● आवश्यकता क्या है?

जिस वस्तु के बिना हमारे शरीर की संचालन क्रिया अधूरी रह जाती है उसकों आवश्यकता कहते है। **"आवश्यकता की पूर्ति कर लो : वाकी व्यसन है।"** भोजन के बिना जीवन नष्ट हो जावेगा अत: अब ग्रहण करना

पड़ेगा। आहार आवश्यक है। हवा के बिना जीवन नष्ट हो जायेगा अत: श्वांस लेना आवश्यक है। जल के बिना जीवन नष्ट हो जायेगा अत: जल से प्यास बुझा ले। लेकिन पंच व्यसन और पंच विषय - ये आवश्यक पदार्थ नहीं है।

● शरीर के लिये निम्नलिखित तत्वों की आवश्यकता है -

अ) पृथ्वीतत्व गेंहूँ, जौ वनस्पति, पौधा, फल, कंद इत्यादि खाध्य पदार्थ सभी पृथ्वी तत्व है।

ब) जलतत्व - प्यास के लिये,

स) वायुतत्व - श्वाँस के लिये,

द) अग्नि तत्व - पाचन के लिये, आकाश तत्व - शून्य को भरने के लिये।

(तत्व यदि शरीर को कम दिये जाये तो साधना बढ़ जाती है)।

● परमार्थ क्या है?

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निजकृत करम भोग सबु भ्राता।।

जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा।।

धरनि धामु धन पुर पनिवा:। सरग नरकु जहँ लगि व्यवहा:।।

देखिअ सुनिअ गुनिय मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं।।

धरणी, धाम, धन, पुर, परिवार, जन्म-मृन्यु, सम्पत्ति-विपत्ति, स्वर्ग-नरक इनके विषय मे कहना-सुनना-गुनना मोह का मूल है। जो स्वर्ग की कामना करते हैं तो वह भी मोह का मूल है, परमार्थ का वहाँ प्रश्न ही नहीं खड़ा होता। तो परमार्थ क्या है? परमार्थ है केवल एक परम पुरूष परमात्मा का चिन्तन!

● पंच विषय क्या है?

शब्द - वाणी का विषय है

स्पर्श - त्वचा का विषय है

रूप - नेत्र का विषय है

रस - जिहवा का विषय है

गंध - घ्राण का विषय है

● अभिलाषा क्या है?

जीव का बंधन व शरीर का आवागमन जिससे मिट जाये उसे अभिलाषा कहते है। अभिलाषा यह होनी चाहिये, कि भगवद् प्राप्ति हो।

● पूर्ण जीवन क्या है?

वासना की विस्मृति कर दें, कामना का अभाव कर दें, इच्छाओं का परित्याग कर दें, आवश्यकतओं की पूर्ति कर लें फिर अभिलाषा में भगवद्प्राप्ति हो तो यही पूर्ण जीवन है।शरीर परिश्रमी हो, मन में संयम हो, चित्त वैराग्यवान हो, बुद्धि विवेकवती हो, अहंकार सतोगुणी हो, यही जीवन की धन्यता है, यही जीवन की पूर्णता है। फिर तुम इन सबके साक्षी हो, और सजग हो। यदि तुम सजग नहीं रहोगे तो इन्द्रिया संयम नहीं बरतेगी, जब इन्द्रिया संयम नहीं बरतेगी तो भोग हो जायेगा। भोग हो जायेगा, तो फल के अधिकारी बनोगे। फल के अधिकारी बनोगे तो बंधन में आओगे। बंधन में आओगे, तो भय जन्म ले लेगा। भय जन्म ले लेगा, तो मरण धर्मी बनोगे। याद रखो - ''परिस्थितियाँ जीवन नहीं है।''

● समाधि क्या है

प्रार्थना का अन्तिम पड़ाव समाधि है। समाधि का अर्थ है इन्द्रियशून्य जाग्रत अवस्था जिसमें इन्द्रियाँ अपने विषयों से तटस्थ रहती हैं।

● भक्त, भगवन्त एवं गुरु क्या हैं?

भक्त – जिसमें थोड़ा सा प्रभु के प्रति प्रेम पैदा हो गया। प्रभु के प्रति प्रेम को राग कहते हैं।

एवं प्रभु के प्रति जिसका संदेह मिट गया है, वह भक्त है।

भगवन्त – जिसमें दैवीय गुण उतर आये है।

गुरू – जिसमें उपरोक्त सारे गुण है। गुरु, परमात्मा का सगुण रूप है।

● उपासना क्या है ?

प्रतिबिम्ब को जब हम देखते है तब अपने बाल निकालते है यह अपने से हटकर देखना ही उपासना है।

उपासना के चार अंग होते है – 1. पत्रम् 2. पुष्पम् 3. फलम् 4. तोयम्

पत्र – हमारी जिह्वा है जिह्वा से हम संसार के वर्णन तो करते है पर प्रभु का वर्णन नहीं करते, कुछ क्षणों के लिये जिह्वा से प्रभु का वर्णन करना ही पत्र चढ़ाना है।

पुष्प – नेत्रों से हम संसार को तो देखते है पर कुछ क्षणों के लिये नेत्रों से प्रभु के रूप को निहारना ही पुष्प चढ़ाना है।

फल – फिर आंख बंद करके प्रभु के रूप को अन्दर ले जायें और सिर झुकाकर आत्म निवेदन करना ही फल को चढ़ाना है कि प्रभु अपने अगणित पापी तारे, गणिका तारी, सवरी तारी, अजामिल को तारा, मैं बहुत अधम, नीच और पापी हूँ इस पापी को तारे तो महान दया होगी।

तोयम – इस क्रिया में दो दृग बिन्दु निकल जाये या अश्रुपात होने लगे तो तोयम् अर्थात् जल को चढ़ाना है।

कलियुग जब आयेगा तो उनकी जगह प्रतीकोपासना करेगें। पत्र की जगह बेल पत्र, पुष्प की जगह गैंदा, कनेर, गुलाब, फल की जगह केला सेब इत्यादि जल की जगह लोटा भर पानी चढ़ायेगें, जिनकी उसे कोई आवश्यकता नहीं। ये क्रियायें भी केवल पर्व काल में करेगें।

कलियुग में पत्र के स्थान पर बेल पत्र, पुष्प की जगह गेंदा, कनेर, गुलाब, फल की जगह सेब और केला आदि एवं अश्रुजल की जगह लोटा भर जल चढ़ाते है अत: इसको प्रतीकोपासना कहते है।

● पूजा क्या है ?

जब यह शरीर संसार में आता है तो उसमें निम्न दोष लग जाते है। हृदय – राग और द्वेष करता है, शरीर– हिंसा और चोरी करता है, मन– में वाणी के द्वारा झूठ और कपट उतर आते है। अत: हृदय राग (Attachment) करता है। परन्तु याद रखें कि "Attachment is seed of sorrow"

अर्थात संसार में जब कोई किसी से प्रेम करता है, तो उस प्रेम में रोना आ जाता है। लेकिन ईश्वर से जब प्रेम करता है तब उसमें कोई दु:ख नहीं होता है। ईश्वरीय प्रेम में शोक, दु:ख के बादल नहीं मडराते। पाषाण पूजा निम्न पूजा है, इसी को मूर्ति पूजा कहते है यह तीसरे नम्बर की हैं। व्यक्ति पूजा मध्यम श्रेणी की तथा विराट पूजा उत्तम श्रेणी की। विराट पूजा – यह बुद्धि से होती है सबको ब्रह्म स्वरूप मानकर नमस्कार करते है।

''हिंसा, चोरी से रहित शरीर हो, झूठ और कपट से अदूषित वाणी हो, जब ये प्रभाव समाप्त हो जाते है तब शरीर मंदिर बन जाता है। तब इस शरीर रूपी मंदिर में मन रूपी दीपक को प्रज्जवलित करना ही ''पूजा'' है।''

● आवागमन से कैसे छुटे?

इसके लिये व्यक्ति का मन निर्मल हो, मोह रहित हो, गुण दोष से रहित हो, नित्य और अनित्य पदार्थो की कामना न हो, सभी द्वन्द मिट गये हो तो आवागमन

मिट जाता है। जीवात्मा की तीन अवस्थायें है - जागृत, स्वप्न और सुसुप्ति ।इनका उल्लघंन करके जो मायाकार अर्धचन्द्र से परे हो जाते है और बिन्दु में समाहित हो जाते है वह आवागमन से मुक्त हो जाते हैं। फिर स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर एवं कारण शरीर से जीव का छूट जाना ही मुक्ति है। जब तक स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर नहीं छूटते तब तक वासना और शरीर भाव रहता है।

● नाम और नामी क्या है ?

महात्मा तुलसी कहते हैं- "समझति सरिस नाम और नामी, प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी।"

भावार्थ - 1. नाम और नामी समान है, दौनो की आपस में प्रीति ऐसी है कि नाम प्रभु है और नामी अनुगामी है। नाम से नामी प्रकट होता है। नाम निराकार है नामी साकार है। संसार में प्रत्येक व्यक्ति निराकार का उपासक है। नामी से नाम बनते है और नाम से नामी प्रकट होता है।

● ब्रह्म मुहूर्त क्या है ?

जब हम परमात्मा के लिये कुछ भी करते है वही ब्रह्म मुहूर्त है।

● सन्त कौन है?

"सन्त सोई जाके उर दाया, हरि से विमुख करै सोई माया।"

सन्त वही है जिसके हृदय में दया उतर आई हो अर्थात अन्य भाव मिट गया हो। शरीर सबका 5 तत्वों का, संचालक सबका एक, पर जैसे- राम सनेही का पुत्र छत से गिरा कि उसे धक से हुयी और जैसे ही उसने जाना कि यह पड़ोसी राम सनेही का लड़का था वैसे ही धक धक बन्द हो गयी और अन्य भाव जागृत हो गया। यदि अन्य भाव जागृत न होता तो सन्त होते। जब तक सब में ब्रह्म का दर्शन नहीं होगा तब तक हम मुक्त नहीं है। अर्थात जीवन मुक्त नहीं है।

● ईश्वर प्राप्ति कैसे हो? निम्न उदाहरणों का चिन्तन/मनन करके देखें।

1. **सो जानहि जेहि देह जनाही, जानिह तुम्हहि तुम्हहि हुई जाइ।।**
2. **मोह कपट, छल छिद्र न भावा, निर्मल मन जन सोई मोह पावा।**
3. **हरिव्यापक सर्वत्र समाना, प्रेम ते प्रकट होय मैं जाना।**
4. **सतत् ध्यान - (Continuous Remembrance)- जागत सोवत सुरति तुम्हारी।**

अ) आसक्तियों के पिटारे से अलग कर लो अपने को। अन्त:करण के दबाव एवं प्रभाव से बाहर आओ। बाहर आते ही प्रवेश द्वार मिल जायेगा।हमें शरीर मिला है यह हमारा पुरूषार्थ नहीं कृपा है प्रभु की। इस शरीर के रूप में प्रभु की कृपा हमारे साथ है, स्वस्थ तन, सुन्दर मन और यह भाव जो मिला है एक सुयोग है। यह सुयोग बन गया है प्रभु कृपा से- तो भक्ति की सरिता में अपने आप को ढीला छोड़ दो। अपनी चेष्टायें नहीं करना, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार यह जो अन्त:करण है उसके दबाव एवं प्रभाव से अलग वह जाना। बह जाना भक्ति के प्रवाह में, पहुंच जाओगे एक दिन प्रियतम के पास। शान्त हो जाओगे, जीवन का शाश्वत समाधान उपलब्ध हो जायेगा। अपनी कोशिश, अपना मन, बुद्धि लगाया तो थकोगे, टूट जाओगे एवं यात्रा अधूरी रह जायेगी। जीवन व्यर्थ हो जायेगा। निर्णय यह करना है की तुम्हे किस तल पर रहना है -शरीर के तल पर पशु रहता है। मन के तल पर पागल और झगडालू रहता है।, बुद्धि के तल पर विवेकी रहता है। आत्म तल पर ज्ञानी रहता है। जब साधक ध्यान में आत्मतल पर स्थिर हो जाता है तब शरीर की भिन्नता उसे दिख जाती है और विश्वास दृढ़ हो जाता है।

किसी ने कहा है कि – ''खंजर की क्या मजाल कि घायल करे मुझे, गर तेरा ही ये खयाल है, तो घायल हुआ है तू।"

ब) ज्ञान, वैराग्य एवं भक्ति द्वारा भगवत प्राप्ति के लिये अग्रसर होगें। अज्ञान विवेक से मिटेगा। ज्ञान के द्वारा ही साधन की सिद्धि होगी। भजन के द्वारा आत्मशान्ति, प्रसन्नता एवं उल्लास पैदा होता जाय तो हमें ज्ञान की प्राप्ति हो रही है, ऐसा समझना चाहिये। वैराग्य से ज्ञान प्राप्त होता है। ईश्वर मिलेगा कि नहीं–यह अज्ञान है। इसी अविद्या का परित्याग करे, विद्या का साथ करे। ज्ञान और वैराग्य दोनो उपास्य स्वरूप है भक्ति फल स्वरूप है। **"जिन हरिशरण- न एकौ बाधा।।''** और मार्ग की बाधाओं रुपी रोग के लिए कहा है – **"राम कृपा नांसहिं सब रोगा।" "भक्ति रूपी पक्षी, दो पंख ज्ञान और वैराग्य, पूँछ रूपी तत्वज्ञान एवं सिर रूपी विवेक की सहायता से परमात्मा का मिलन होता है।''** होय विवेक मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरण अनुरागा।

स) "आत्मा को रथी, शरीर को रथ, बुद्धि को सारथी, मन को लगाम, इन्द्रियों को घोड़ा और विषयों को उन घोड़ो का चारा बताया गया है। अपने आप को रथी मानते हुए जो विषयों से विमुख हो जाये, वह भगवत प्राप्ति की दिशा मे अग्रसर होगे। भगवत प्राप्ति स्वत:प्राप्त होगी।"

मन माया प्रकृति जगत, चतुर नाम एक रूप। जब तक ये सांचे लगे, नहिं जाने निज रूप।।

2. आप मिटो हरिभजो, तन मन तजो विकार।

निर बैरी सब जीव सो, दादू यह मत सार।। (दादु साहब) (आप मिटो माने अहंकार मिटायें।।)

● उन परमात्मा का ढूँढा कहाँ और कैसे जाय?

पुर बैकुण्ठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई।।

कोई देवता उन्हे बैकुण्ठ चलने के लिये प्रेरित कर रहा था, तो कोई कह रहा था कि क्षीर सागर मे भगवान रहते है। उसी सभा मे शंकर भी थे, किन्तु उन्हे बोलने का अवसर ही नहीं मिल पा रहा था। किसी प्रकार एक वचन कहने भर के लिये अवसर मिला, 'अवसर पाई वचन एक कहेऊँ।'– तो वे बोले–

"हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मै जाना।।"

ठीक है, एक परमात्मा के प्रति श्रद्धा स्थिर हो गयी, धर्माचरण के लिये तैयार भी हो गये(किन्तु उस एक परमात्मा को खोजें कहाँ? क्या तीर्थो मे, मंन्दिरों मे? भजन किया जाये तो कहाँ पर किया जाये? इस पर कहते हैं–

ईश्वर: सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रा:ढाति मायया ।।

अर्जुन! वह ईश्वर सम्पूर्ण भूत–प्राणियों के हृदय–देश मे निवास करता है। जब इतना समीप है तो दिखता क्यों नहीं? तब बताते हैं कि माया के कारण सबलोग भ्रमवश भटकते रहते हैं। इसलिये नहीं देख पाते। तो क्या करें, शरण किसकी जाये?

गीता मे कहते हैं, **'तमेव शरणं गच्छ'** – अर्जुन् उसी हृदय–देश मे स्थित ईश्वर की शरण जाओ। **'सर्वभावेन'**– सम्पूर्ण भावों से जाओ। ऐसा नहीं कि आधा भाव देवी मे तो आधा देवता में। सम्पूर्ण हृदय से ही समर्पित हो जाओ। इससे लाभ क्या होगा?

'तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्।'

उसकी कृपा–प्रसाद से तुम परमशान्ति को प्राप्त कर लोगे। उस स्थान को पा जाओगे जो शाश्वत है, सदैव है। अत: परमात्मा के ऊपर शोध करने का

क्षेत्र हृदय है, बाहर कहीं नहीं। अन्दर उतरना है। यही अंतस यात्रा है।

किन्तु समस्या तो यह है कि वह हृदयस्थ ईश्वर आरम्भ मे दिखाई नहीं देता। हृदयस्थ ईश्वर की शरण में जाये तो कैसे जाये? तो अगले ही श्लोक मे कहते हैं- गोपनीय से भी अतिगोपनीय एक बात और सुनो!

मन्मना भव मद्भक्तो मध्याजी मां नमस्करुः।

मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिज्ञाने प्रियोऽसि मे।।

भगवान स्वयं कह रहे हैं :- "हे अर्जुन! तू मेरे मे अनन्य मनवाला हो, मेरा अनन्य भक्त हो, मेरे प्रति श्रद्धा से पूर्ण हो मेरे को नमन कर! मेरे द्वारा निर्दिष्ट कर्म को कर! ऐसा करने से तू मेरे का ही प्राप्त होगा"। अब ये शास्त्रोक्त प्रमाण है। इससे ज्यादा क्या कहा जाये।

● भक्त कौन हैं?

1. आर्तभक्त - "जपहिं नाम जन आरत भारी। निरहिं कुसंकट होहिं सुखारी।।"
2. अर्थार्थी भक्त - "साधक नाम जपहिं जय लाये। होहिं सिद्ध अण माधिक पाये।"
3. जिज्ञासु भक्त - "जाना चहहि गूढ़ गति जेउ। नाम जीह जपि जानहि तेऊ।।"
4. ज्ञानी भक्त - "ज्ञानी प्रभुहि विशेष पियाए।"

● शरीर कितने होते हैं?

जागृत में चेतन नेत्र में होता है, शरीर स्थूल कहलाता है, अवस्था जागृत होती है। स्वप्न में चेतन हिता नाड़ी में होता है। शरीर सूक्ष्म होता है अवस्था स्वप्नावस्था होती है। सुसुप्ति में चेतन हृदय में रहता है और अज्ञानता से घिर जाता है - शरीर कारण कहलाला है। अवस्था सुसुप्तावस्था होती है। तुरीयावस्था में चेतन व्यापक होता है शरीर महाकरण होता है। चेतन सर्वव्याप्त होता है। आंख को सत्ता देता है देखने की अन्यथा आंख तो मुर्दे के पास भी होती है एवं कान को सुनने की सत्ता देता है। जीभ को वाणी की सत्ता देता है। नाक को सूघने की सत्ता देता है। हिता नाम की नाड़ी में जब सूक्ष्म शरीर को जब चतेनाभास का संयोग मिलता है तो स्वप्न दिखाई देता है। जगत बड़ा स्वप्न है तथा यह छोटा स्वप्न है। योगी कारण शरीर में रहता है। उपासक सूक्ष्म शरीर में वास करता है। कर्म काण्डी का मन स्थूल शरीर में बंधा हुआ है। अतः वह स्थूल शरीर में रहता है। ज्ञानवान बंधा हुआ नहीं है। साक्षी अपनी महिमा में रहता है। तो उद्देश्य इन तीनों शरीर के पार अपने साक्षी भाव को प्रगट करना है।

● परमात्मा का स्वरूप क्या है?

परमात्मा "सत चित आनन्द" स्वरूप है।

सत् - जिसका कभी विनाश नहीं होता अर्थान-त्रिकाल में हो।

चित् - जिससे सब जाने जाते है। यही सर्वव्यापी चेतना है।

आनन्द - जहां शोक, दुःख और पश्चाताप के बादल नहीं मडराते - अतः वह परमात्मा सत् चित आनन्द स्वरूप है।

"एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद पर धामा ।। "

एक रस रहता है इस लिये सत् है। उससे सब जाने जाते है इसलिये चित् है। वह आनन्द की खान है, वहां दुख है ही नहीं इसलिये आनन्द है। (अनीह -इच्छा रहित)

● ब्रह्म, ईश, माया एवं जीव में भेद क्या हैं?

किसी कवि की रचना है, कि-

ब्रह्म - ब्रह्म तो वही है जो सत् चित आनन्द धन, निर्विकल्प निराकार

स्वयं नित प्रकाशै ।

ईश्वर – ईश तो ही है जो निज रूप को न भूले कभी। माया गहे– माया से प्रथक ही भासे ।।

माया – माया तो वही है जो सत् रज तम गुणन को धर नाना नाम रूपो में उपजे और विनाशे ।।

जीव – जीव तो वही है जो अज्ञान सन योग पाय भूला निज रुप भ्रम फांस न निकासे।

''माया–ईश न आप कहँ, जानि कहीं जो जीव।।''

अर्थात – आत्मा जब अन्त:करण (मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार (अन्त:करण चतुष्ठय) की उपाधि से विभूषित होती है तो जीव कहलाती है। (नोट–ब्रह्म –बिम्ब है, जीव–प्रतिबिम्बवत् है, ईश–प्रतिबिम्ब है)

● तुरीयावस्था क्या है?

जाग्रत एवं स्वप्नावस्था से भी परे साक्षी भाव की अवस्था तुरियावस्था है। संशय से मुक्त हो जाना ही तुरीयावस्था है। तुरीयावस्था तक पहुचते–2 नौ स्वरों का तथा आठ नादो का ज्ञान हो जाता है।तुरीयावस्था का ज्ञान ब्रह्मरन्ध्र में सहत्रदल पर अनुभव होता है, (अष्ट सिद्धि) 1. अणिमा 2. गरिमा 3. लधिमा 4. महिमा 5. प्राप्ति 6. प्रकाम्य 7. ईशीत्व 8. वशीत्व की प्राप्ति होती है।

संसार का बीज मन है। मन में सुख है, मन में दु:ख है। मन से संसार है। वस्तु न हो और भासे यही माया है। तुरीयावस्था में सभी का अभाव होता है और संशय मिट जाते हैं। संसार, Object है एवं इसका कर्ता (Subject) मन है। मन अगर समाप्त हो गया तो संसार समाप्त हो जाता है।

● नवधा भक्ति क्या है?

1. श्रवण 2. कीर्तन 3. स्मरण 4. पाद सेवन 5. अर्चन 6. वंदन 7. दास्य 8. सखा 9. आत्मनिवेदन।

● ज्ञान और विज्ञान मे क्या अंतर है?

– जिसके द्वारा जानाजाये वह ज्ञान। जो आचरण में आये वह विज्ञान।।

ज्ञान निम्न तरीको से प्राप्त होता है – 1. गुरूजनों से 2. स्वाध्याय से 3. सत्संग से 4. संत से 5. चिन्तन से 6. मनन से 7. कुछ तकनीकियो की सविधि अभ्यास से 8. पुस्तकों से

"इसे प्राप्त ज्ञान कहते है, प्राप्त ज्ञान में विस्मृति होती है", जब प्रभु किसी के हृदय में अपनी कृपा से ज्ञान का दीपक जलाकर स्थापित करते है तब उसका अज्ञान मिटता है और वास्तविक ज्ञान आता है। **"वास्तविक ज्ञान में विस्मृति नहीं होती है और इसे साक्षी का ज्ञान भी कहते है।"**

● संसार मे नाम अपराध क्या है?

शत् पुरूष की निन्दा नहीं करनी चाहिये, अशत् पुरूष को नाम के महत्व को नहीं बताना चाहिये। वेद में अश्रद्धा, शास्त्र में अश्रद्धा, गुरू वाक्य में अश्रद्धा एवं श्रुति वाक्य में अश्रद्धा हो तो नाम जप में नाम का अपराध लगेगा। नाम का अर्थ क्या है? ऐसा विचार में आ गया तो नाम अपराध लगेगा। नाम के बल पर निषिध वृत्ति का अनुसरण करोगे तो उस नाम का अपराध लगेगा। ऐसा व्यक्ति जो धर्म कर्म का परित्याग किये हुये है, पापाचरण में लगा हुआ है उसे नामापराध लगेगा और फिर कर्मबन्धन शुरु होता है।

● ज्ञान वैराग्य क्या हैं?

विषयों से अरूचि होना ही बैराग्य है। अन्त:करण के भ्रम का नाम मोह है। अपना बोध होना ही ज्ञान है। **"अपनी सत्ता से अन्य की सता को**

स्वीकार न करना ही वैराग्य है। अपनी सत्ता में प्रियता होना ही भक्ति है। ज्ञान, वैराग्य और भक्ति इस त्रिवेणी का नाम ही संगम है।" इलाहाबाद का संगम किसी संत की पहुँची हुयी अवस्था की प्रतीति की स्मृति का नाम है। यही पूर्ण जीवन है।

"ज्ञान अनन्त है, भक्ति स्वतंत्र है, कर्म अमृत है"

नोट – हर नया ज्ञान प्रथम ज्ञान की वृद्धि करता है। भक्ति किसी के अधीन नहीं है। कोई भी कर्म तभी शान्त होता है जब अपना फल दे देता है। सीमित ज्ञान से असीम की चाह ही बन्धन का कारण है।

● धर्म व उसके लक्षण क्या हैं?

निरन्तर जिसके द्वारा कल्याण हो वह धर्म है। धारणा से ही धर्म की स्थिति होती है।

● धर्म के दश लक्षण क्या हैं?

धृति, क्षमा, दमो, आस्तेय, शौच, इन्द्रिय निग्रह, धीर विद्या, सत्यमाक्रोधो, दशम धर्मलक्षणम्।

1. धृति – किसी विषय (अप्रिय) की जान लेना और उद्विग्न न हो।
2. क्षमा – सहन शक्ति।
3. दमो – इन्द्रियों के उद्वेग को दमन करना।
4. आस्तेय – चोरी न हो, कपट छल छिद्र न होना, शील स्वभाव रखना
5. शौच – आचार विचार शुद्ध हो वाहय व अंत: शुद्धि हो
6. इन्द्रिय निग्रह – इन्द्रियों का संयम करना (उनका कार्य है दौड़ना विषयों की ओर)
7. धीर – बुद्धि को स्थिर रखना
8. विद्या – सद् विद्या की प्राप्ति करना (आत्म विद्या, ब्रह्म विद्या)
9. सत्य – मधुर सत्य व प्रिय वाणी हो।
10. अक्रोध – क्रोध रहित हो।

● कर्म कितने प्रकार के होते हैं?

– कर्म तीन प्रकार के होते हैं।

1. संचित – पहले जन्मो में जो किया हुआ है
2. प्रारब्ध – संचित कर्म ही समय के साथ आकर प्रारब्ध् बन जाते है।
3. क्रियमाण – अब जो किया जा रहा है वह आगे भोगना ही पड़ेगा।

(नोट– कर्म कर्म से कटता है, जैसा काँटा, काटे से निकला है, लोहा, लोहे से कटता है।) ।. भक्ति रहित कर्म सफल नहीं होता। ज्ञानाग्नि में सभी कर्म दग्ध हो जाते है, अपनी सत्ता का बोध होना ही ज्ञान है। जैसे लकड़ी के ढ़ेर को अग्नि जला देती है वैसे ही ज्ञानाग्नि में संचित और क्रियमाण कर्म नष्ट हो जाते है। और प्रारब्ध कर्मो का क्षय भोग से हो जाता है।भक्ति के साथ जब ज्ञान और वैराग्य दोनों उदय हो जाते है तो भी सभी कर्म क्षय हो जाते है। नया कर्म न हो पुराना कर्म नष्ट हो जाये तो प्रारब्ध नष्ट हो जायेगा।

हमारा ही संस्कार भीतर भूख के रूप में और बाहर अन्न के रूप में खड़ा है। हमारा ही संस्कार भीतर भक्ति के रूप में और बाहर भगवान के रूप में खड़ा है।कृपा व्यक्ति के अपने संचित संस्कारों की होती है। अपनी कृपा की जागृति के बिना कल्याण सम्भव नहीं है। किसी व्यक्ति की भी नहीं ।

उदाहरण :– अर्जुन स्वयं इन्द्र के अवतार थे। शंकर की कृपा साथ थी। दैवीय कृपा साथ थी, तथा साक्षात् श्री कृष्ण सामने थे फिर भी उन्हे मोह एवं

भय हो गया अर्थात अपनी कृपा की जागृति के बिना कल्याण सम्भव नहीं है।

● भक्ति का स्वरूप क्या है?

– भक्ति चार प्रकार की होती है।

1. बैधीय–विधि पूर्वक–भक्ति स्वरूप की ही होती है।
2. रागात्मिका भक्ति–जिस भक्ति में हर्ष, रोमांच व अश्रुपात हो यह अनुरागात्मिका भक्ति होती है।
3. गौड़ी भक्ति–विधि और गुणों से जो अनुराग पैदा हो जाय वह गौड़ी भक्ति कहलाती है।
4. प्रेम लक्षण भक्ति–इसमें प्रभु दिखाई देते है, संसार से विरागी हो जाता है।

(हम कभी भी अपने आत्म स्वरूप से प्रेम नहीं करते, अपने से प्रेम करना ही भक्ति है। बाहर की क्रियायें भक्ति का प्रदर्शन मात्र है।)

● पाँच वायु क्या हैं?

ध्यान में प्राण वायु को अपान वायु से मिलाना है। जब जीवशक्ति सहस्त्र दल मण्डल में लय हो जाती है तब परम सत्ता से एकाकार होता है और जीवन में परम लक्ष्य की प्राप्ति होती है। निम्न पाँच प्राण वायु शरीर में व्याप्त है।

1. प्राण वायु – श्वांस प्रस्वास – नासा में हृदय तक वास
2. अपान वायु – नाभि में पांव तक 3. समान वायु – हृदय से नाभि तक
4. उदानवायु – कंठ से आज्ञा चक्र तक 5. व्यान वायु – सर्वत्र व्याप्त है।

हनुमान जी, वायु पुत्र हैं। पंचमुखी हनुमान ही, पंचप्राण के रूप में भौतिक शरीर में व्याप्त हैं।

● मानस पूजा क्या है?

– दो प्रकार है –

1. जिसमें हम अपने को धाम पर ले जायें।
2. जिसमें हम धाम को अपने निकट लाये। फिर कल्पना करें कि ठाकुर मेरे सिर से धीरे–धीरे प्रवेश कर रहे हैं, इसी प्रक्रिया में हम अपने को भूलने की कोशिश करे ठाकुर ही मेरे चारों ओर, उपस्थित हैं ऐसा भान करें। जब हमें शरीर का भान हो, तो श्वांस बाँई ओर से लेने लगें और, महसूस करे कि जीवसत्ता हृदय में है और ठाकुर मेरे कण्ठ में है। फिर, श्वांस बदलें औरर दाई ओर से लेने लगें और मससूस करें कि जीव सत्ता मेर कण्ठ में है और ठाकुर मेरे हृदय में हैं। इसी तरह स्वर बदलते रहें। धाम को निकट लाने में हम मानसिकता में गंगा से जल ले आयें फिर हम पात्र में ठाकुर को स्नान करायें, फिर उनको वस्त्रादि पहनायें। चन्दन, इत्र भेंट करे, दूध और फल भोग लगायें फिर आटा गूथें, रोटी तैयार करे सेंके, चुपड़े और विधिवत दाल व सब्जी अपने हाथ से ठाकुर को खिलायें। फिर ठाकुर को आसन दें, चरण सेवा करें आदि। इतनी देर के लिये हम संसार को भूले रहे जब तक मानसिक पूजा की।

● मन्त्र क्या है?

– मंत्र में स्वर, वर्ण, नाद विशेष का एक क्रमिक संगठन होता है अत: उसका अनुवाद अथवा व्युत्क्रम नहीं हो सकता।

– मंत्र का अर्थ है चिन्तन इसके द्वारा मनन होता है यही मन है मनन शील ही मनु है। मनु ही मंत्र है। मनन एवं साधन ही मानव की इतर जीवों से विशिष्टता है।

– यद्यपि सभी शब्द समूह शक्ति के विभिन्न स्वरूप हैं, परन्तु मंत्र और

बीजाक्षर सम्बद्ध देवता के स्वरूप है। स्वयं देवता है एवं साधक के लिये प्रकाशमान तेज पुन्ज हैं। इससे अलौकिक शक्ति जाग्रत होती है।

- मंत्र शाश्वत और अपरिवर्तनशील ब्रह्म है। मंत्र ही देवता हैं। अर्थात पराचितशक्ति मंत्र रूप में व्यक्त होती है। मंत्री (मंत्र करने वाला) साधन शक्ति द्वारा मंत्र को जाग्रत करता है।
- मूल में साधन शक्ति ही मंत्र शक्ति के रूप में अधिक शक्तिशालिनी होकर व्यक्त होती है। साधन के द्वारा साधक का निर्मल और प्रकाशयुक्त चित्त मंत्र के साथ एकाकार हो जाता है। और इस प्रकार मंत्र के अर्थस्वरूप देवता का उसको साक्षात्कार होता है।
- साधक की जीव शक्ति मंत्र शक्ति द्वारा उद्दीप्त होती है, ठीक वैसे ही जैसे वायु लहरियों के सर्म्प से अग्नि प्रज्वलित होती है।
- मंत्र शक्ति के द्वारा जीव शक्ति को दैवीय शक्ति प्राप्त हो जाती है फिर उस दैवीय शक्ति से दैवीय कार्य सम्पन्न होते है और साधक को दैवीय सम्पदा प्राप्त हो जाती है।
- मंत्र अक्षरों से बनते है अक्षर एवं उनके बनने वाले समुदाय और शब्द सभी ब्रह्म के व्यक्त रूप है।
- क्रियात्मिका शक्ति के विविध स्वरूप है। मुख से उच्चारित, कानों से से श्रुत और मस्तिक से समझे हुये सभी शब्द इस क्रियात्मिका शक्ति के स्वरूप है।
- मंत्र में विशिष्ठ ध्वनियां भी होती है जो सम्बद्ध देवता के स्परूप को व्यक्त करती है।
- मंत्र किसी व्यक्ति विशेष की विचार सामग्री नहीं है अपितु वह चैतन्य का ध्वनि विग्रह हैं।

मंत्र शब्द का पूर्वार्ध मन अथवा मनन शब्द से सम्बद्ध है तथा उत्तरार्ध(त्र) का अर्थ है प्राण। तात्पर्य यह है कि मंत्र मनन के द्वारा संसार अथवा भौतिक जगत से जीव की रक्षा होती है। यह जीव को मुक्त भी करता है और जीव को सिद्धि प्राप्त कराता है तथा चर्तुवर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में भी सिद्धि देता है।

● साधना का अभ्यास कैसे करें –

1. सर्व प्रथम हमें 27 बार ऊँ कहना चाहिये लम्बी स्वास लेकर।

2. फिर जो स्वर चल रहा है उसके विपरीत स्वर से तेजी से श्वाँस लें ताकि वह स्वर जागृत हो जाय।

3. ऐसे जब दोनों स्वर खुल जाये तभी ध्यान शुरू करना चाहिये।

4. जब तक सूर्य स्वर अर्थात दाहिनी ओर से स्वर चलता है तब तक साधना में विघ्न होता है और हमारा मन नहीं लगता।

5. लेकिन स्वर बदलाव करके यदि हम चन्द्र स्वर को शुरू कर ले तो तुरन्त मन स्थिर हो जायेगा, यह साधना का सबसे सरल ढंग है।

● साकार और निराकार क्या हैं –

"नेत्र की दृष्टि से जो साकार है बुद्धि की दृष्टि से वही निराकार है।"
साकार को कार्य ब्रह्म कहते है और निराकार को कारण ब्रह्म कहते है। उदाहरण के लिये जीव, कार्य ब्रह्म है तो शब्द को कारण ब्रह्म कहते है। ब्रह्म के प्रकाश से दोनों प्रकाशित होते है। कक्षा एक में भाषा ज्ञान अथवा अक्षर ज्ञान सिखाया जाता है अक्षर ज्ञान उसी, साक्षी के ज्ञान को कहते है। भाषा साकार है। अक्षर निराकार है।

और द्वंद तो है ही नहीं क्योंकि–

"संसार के करतार का आकार न होता।

तो उसका ये संसार भी साकार न होता।।

साकार से साफ जाहिर है निराकार की हस्ती।

यदि साकार न होता तो निराकार न होता।।

हम मान भी लेते कि वह दृष्टि से है परे।

आंखों में अगर उसका चमत्कार न होता।।"

जब हम इष्ट की मूर्ति को देखते है जो कागज, पत्थर या धातु की बनी होती है फिर उसमें हम गुण चरित्र एवं शक्ति की भावना करते है। ये सब हम बुद्धि से करते है। बुद्धि सें इनका देखना निराकार एवं नेत्र से मूर्ति देखना साकार है।

● गुरू और पूर्ण ब्रह्म में भेद

1. बोध – इस शरीर के रहते हुये इस शरीर में केवल ब्रह्म की अनुभूति होना ही बोध है। यही साक्षी भाव है।

2. गुरू – वह है जिसे बोध हो गया है। जिसे बोध हो जाय वह ब्रह्म ही है। गुरू मायातीत होता है, गुरू का शरीर मायिक होता है पर ईश्वर का शरीर चिन्मय होता है।

3. ईश्वर – ईश्वर को बोध होने के साथ–साथ कर्तव्य अभिमान भी होता है ईश्वर माया का सहारा लेकर अवतरित होता है इसे मायाबिश्ठ ईश्वर भी कहते है।

4. ब्रह्म – ब्रह्म वह है जिसके प्रकाश में सभी प्रकाशित रहते है। जो सदैव बोध में है।

5. अवतार – जो बोध में आये, बोध में रहे और बोध में चले गये उन्हे अवतार कहते है। अवतारी पहले अपनी मण्डली भेज देता है फिर खुद चला आता है और पहले खुद अपने लोक को चला जाता है फिर मण्डली को ले जाता है। जब तक वह पृथ्वी पर रहता है तब तक वह लीला करता है।

● विवेक क्या है?

1. विवेक के प्रकाश में जो वस्तु जिस तरतीव में रखी है उसी तरतीव में दिखाई देने लगती है। उदाहरण – "शरीर रूपी कमरे में बल्व रूपी बुद्धि में जो फिलामेण्ट रूपी विवेक जलता है उसके प्रकाश में कमरे के अन्दर रखी हुयी प्रत्येक वस्तु उसी तरतीब में दिखाई देने लगती है जिस तरतीब में वस्तुयें रखी है।" अर्थात बुद्धि के प्रकाश को ही विवेक कहते है।

2. विवेक का जागरण सत्संग से होता है। उदाहरण – 100 घड़े है प्रत्येक घड़े का निर्मित कारण मिट्टी है और उपादान कारण कुम्हार है, इसी तरह से शरीर के लिये निर्मित और उपादान कारण वह परमात्मा स्वयं है, एक घड़े के निर्मित कारण का ज्ञान होने पर प्रत्येक घड़े का ज्ञान हो जाता है। प्रत्येक घड़े का ज्ञान होने से अभिन्नता सिद्ध हो जाती है इसी का दूसरा नाम प्रेम है। बुद्धि में भेद है वह अलग करती है । ज्ञान में अभिन्नता है तो प्रेम स्वाभाविक हो जाता है। उसी प्रकार प्रत्येक प्राणी का शरीर 5 तत्वों का है और संचालक सबका एक है जिसे निर्मित उपादान कारण भी कहते है। जिन प्राणियों में ज्ञान होने पर 'मैं–तू' का भेट मिट जाता है उनमें प्रेम स्वाभाविक हो जाता है।

3. कर्म काण्ड में क्रिया है। उपासना में भाव होता है। योग में स्थिति होती है। विवेक में तीनो है।

4. मन, बुद्धि, चित, अहंकार एवं वाणी ये सब जब शान्त हो जाते है तब हृदय कमल खिलता है। अर्थात "मन में संकल्प विकल्प न हो, बुद्धि में निर्णय

न हो, चित में चिन्तन न हो, अहंकार अभिमान शून्य हो, वाणी शान्त हो तब हृदय में विराजमान बुद्धि में विवेक का प्रकाश पैदा होता है एवं विवेक जागरण होता है। विवेक यदि एक जगह है–तो ज्ञान है और यदि समष्टि कारक हो जाये तो प्रेम है।"

● चेतन की स्थितियां क्या हैं –

1. जागृत में चेतन नेत्रों में वास करता है। इस समय शरीर को स्थूल कहते है और चेतन का स्थान नेत्रों में एवं अवस्था जागृत कहलाती है।
2. स्वप्नावस्था में चेतन कण्ठ में वास करता है हिता नाम की नाड़ी में – स्थान – कण्ठ, अवस्था – स्वप्न, शरीर – सूक्ष्म होता है।
3. सुषुप्ति में चेतन कारण शरीर में होता है वास हृदय में करता है। स्थान – हृदय, अवस्था – सुषुत्ति, शरीर–कारण होता है।
4. समाधि में चेतन नाभि में वास करता है।
5. तुरीयावस्था में चेतन व्यापक होता है।

● चित्त की स्थितियां क्या हैं?

चित्त जब रजोगुण में होता है तो सांसारिक क्रियायें होती है। रजोगुण से साधना की उत्पत्ति होती है।

चित जब तमोगुण में होता है तो बेहोशी होती है, प्रमाद और आलस बढ़ता है। तमोगुण से क्रोध और वासना की उत्पत्ति होती है।

चित जब सतोगुण में होता है तो समाधि होती है। सतोगुण से उपासना की उत्पत्ति होती है।

सविकल्प एवं निर्विकल्प दोनो समाधियाँ सतोगुण में चित्त होने से होती है, दोनो चित्त की स्थितियाँ है। सविकल्प समाधि में वस्तु के साथ स्थिति होती है, निर्विकल्प समाधि में वस्तु ही मिट जाती है।

गुडाकेश अर्जुन के साथ चित्त सतोगुण की वृत्ति में था। लक्ष्मण 12 वर्ष नहीं सोये लक्ष्मण का चित्त भी सतोगुण की वृत्ति में था। युद्ध के समय अर्जुन को मोह था– परिजनों का, अतएव ज्ञान नहीं था। विराट रूप दर्शन के समय अर्जुन के मन में भय था। अतएव बोध नहीं था। बाद में ही 18 वें अध्याय में मोह नष्ट हुआ तब उन्होंने कहा– "नष्टो मोह: स्मृतिलब्धो।" स्मृति आगयी – अरे हम तो उस अंशी के अनन्त अखण्ड अंश है।

तमोगुण के सन्तुलन से रजोगुण की उत्पत्ति की जा सकती है, रजोगुण से धीरे–2 सतोगुण की बुद्धि करे, सतोगण से सत्योत्कर्ष की उत्पत्ति होती है, सत्योत्कर्ष से सत्योदय होता है, फिर सत्य शुद्धि हो जाने के बाद विवेक की उत्पत्ति होती है फिर विवेक से ज्ञान की उत्पत्ति होती है।

– ध्यान धारणा और समाधि में क्या अन्तर है?

– धारणा, एकाग्रता है – ब्वदबमदजतंजपवद है। चित्त वृत्तियों को कम करने का साधन है। नासिकाग्र या आज्ञा चक्र पर धारणा करती चाहिए।

– अब इस बिन्दु पर पूरी चेतना के सतत प्रवाह का नाम ध्यान है। ध्यान में 'समय' समाप्त हो जाता है। चूँकि मन और समय जुड़े होते हैं – दोनों एक दूसरे पर ही निर्भर हैं – अतएव 'मन' समाप्त हो जाता है। धारणा की ही ध्यान में परिणिति होती है।

– और जब ध्यान करने वाला और ध्यान दोनों एक हो जाये–तो यही समाधि है।

● पंच महाभूत क्या हैं

उँगली के उदाहरण से देखें –

1. अंगूली में हड्डी पृथ्वी तत्व है।

2. उसके आसपास वायु तत्व है।

3. अंगुली हथेली पर घिसने से अग्नि पैदा होती है अत: अग्नितत्व है।

4. छिद्रों में आकाश तत्व है।

5. रक्त में जल तत्व है।

अत: अंगुली में पांच तत्व ही है अर्थात पंच महाभूत ही है कुछ और नहीं।

● पवर्ग क्या हैं?

प – पाप, पुण्य फल – फल, ब – बंधन, भ – भय, म – मरण

नोट :– पाप पुण्य नही तो फल भी नहीं, फल नही तो बंधन नहीं, बंधन नही तो भय नहीं, भय नही तो मरण नहीं। पांच पवर्ग न हों तो अपवर्ग होता है।

उदाहरण – स्वर्ग नर्क अपवर्ग नसैनी। ज्ञान वैराग्य भक्ति सब दैनी।।

अर्थात पवर्ग हमे स्वर्ग और नक्र तक ले जायेगा वहीं अपवर्ग से ज्ञान वैराग्य और भक्ति की प्राप्ति होती है।

● जीव, माया एवम ब्रह्म का सरलतम भेद क्या है?

मैं	यह	वह
(जानने वाला)	(जिसे जाना जाय)	(जिसके द्वाराजाना जाय)
जीव हूँ	माया है	ब्रह्म है
साक्ष्य हूँ	साक्ष् है	साक्षी है
प्रेर्य हूँ	प्रेरणा है	प्रेरक है
दर्शक हूँ	दृश्य है	दृष्टा है
प्रकाश्य हूँ	प्रकाश् है	प्रकाशक है
ज्ञाता हूँ	ज्ञेय है	ज्ञान है
ध्याता हूँ	ध्येय है	ध्यान है

● जप के प्रकार क्या हैं?

1. बैखरी – जिसे हमारे कान सुने और दूसरे भी सुन सकें उसे बैखरी जप कहते है। बैखरी वाणी से किया गया जप वैखरी जप कहते हैं।

2. मध्यमा – मध्यमावाणी से किया हुआ जप मध्यमा कहलाता है। जिसे हम सुने पर दूसरे न सुने उसे मध्यमा जप कहते है। वैखरी वाणी से मध्यमा जप 10 गुनाअधिक प्रभावी होता है।

3. पश्यन्तिजप – यह जप जिहवा को तालू से लगाकर ओठो को न खोलते हुए कण्ठ से किया जाता है। मध्यमावाणी से एक बार जप करने से 100 के बराबर होता है और पश्यन्ति वाणी से किया गया जप 1000 के बराबर होता है।

फिर कण्ठ को इतना थका दे कि जप स्वत: हृदय से होने लगे। इस पर एक बार किया गया जप 10,000 के बराबर होता है। अब हृदय को इतना थका दो कि जप स्वत: नाभि से होने लगे। इस पर 9 बार किया गया जप 1,00,000 के बराबर होता है। इसी जप को अजपा जाप कहते है।

नोट – कैसे जाने कि जप हम हृदय तल पर कर रहे है। इस तल पर हम होश में रहते है पर बाहर के शब्द नहीं सुनाई देते हैं। इस समय चेतना नाभि पर रहती है तब इसे ही पूर्ण यौगिक अवस्था कहते है। अजपा का जब अभ्यास हो जाता है तो हमें 9 नाद सुनाई देने लगते है। अभ्यास किसी एक नाद पर टिक जाये तो हम बिन्दु पर पहुँच जाते हैं। बिन्दु पर पहुचे ही सर्पिणी अपने चक्र खोल देती है फिर जैसे–2 शब्द आगे को अग्रसर होता है वह चक्रों को जगाता चला जाता है और आज्ञा चक्र तक पहुच जाता है और वह योगी बन जाता है।

यही योग है यही दर्शन है। बिनासी से बिनासी के मिलन को संयोग कहते है। और अविनाशी से अविनाशी के मिलन को योग कहते है।

● साधक के लिए सबसे अच्छा भाव क्या है।

जिस तरह कोई बच्चा अपने माता पिता को संकेत करता है तो वह तुरन्त जान लेते है। उसी तरह से जब तुम कोई संकेत भगवान के लिये करो, तो वह भी जान लेता है। अब भगवान से नाता जोड़ने के लिये हमे अपनी आयु निर्धारित करनी पड़ेगी यदि तुम अपने को 2 वर्ष का मानते हो तो जिम्मेदारी सारी माता पिता पर जायेगी। यदि तुम अपने को पांच वर्ष का मानते हो तो खेलते खाते अच्छे लगते हो और इसमे साधक को ईश्वर के प्रति कुछ नहीं करना पड़ता है केवल सम्बधों का निर्वाह करना होता है।यदि तुम अपने को 25 वर्ष का मानते हो तो तुम्हे भी कुछ जिम्मेदारी का निर्वाह करना पड़ेगा। अत: भगवान के सामने आपने अपने को कितना बड़ा माना है वैसे कर्तव्य का पालन करना पड़ेगा। तो स्वयं को बच्चा मान लो। यही पाने का रहस्य है।

● प्रवृत्ति मार्ग क्या है?

गृहस्थ जीवन में रहते हुये फल और आसक्ति को त्याग कर भगवतपरायण बुद्धि से केवल लोक कल्याण के लिये, राजा जनक की भांति जीने का नाम प्रवृत्ति मार्ग है।

● निवृत्ति मार्ग क्या है?

देहाभिमान को त्यागकर केवल सच्चिदानन्द धन, परमात्मा में एकीभाव से स्थित हुये श्री शुकदेव जी और सनकादिको की भांति संसार से विरक्त होकर विचरने का नाम निवृति मार्ग है।

● ध्यान क्या है?

- मन को वर्तमान में खड़ा करने को ध्यान कहते हैं। ये 'अ-मन' की स्थिति भी है। भूत और भविष्य, इच्छा और संकल्प, सुख और दु:ख, राग और द्वेष से परे यह वह वर्तमान पल है-जहाँ तुम अपने मूल स्वरूप से तादात्मय स्थापित करते हो।

- "मैं किसी विचार को नहीं आने दूँगा" - ये सबसे अहंकारी विचार है। विचार आने दो-उनके साथ आसक्ति न करो।

- "मैं अब ध्यान कर रहा हूँ" - ये भी एक विचार है। जब इससे भी मुक्ति मिल जाये-तो वहीं पल, ध्यान का पल है।

- "विचारों से मुक्ति ही संन्यास है"। वरना तो संन्यासी को हिमालय की गुफा में भी ध्यान नहीं लगेगा।

- यह संसार बदल रहा है। जो बदल रहा है-वो दिखाई देता है-पर जो यह बदलाव देख रहा है-वह अपरिवर्तनशील है। यही विवेक जागरण है।

- विषयासक्ति से परे होना ही वैराग्य है। विषय तो संसार में रहेंगे ही-पर उनके प्रति आसक्ति न हो।

- इस प्रकार विचार मुक्त एवं आसक्ति रहित होकर विवेकपूर्ण ढंग से वर्तमान क्षण में स्थित होने की स्थिति 'ध्यान' कहलाती है।

● सब कर्मो के फल का त्याग किसे कहते है?

ईश्वर की भक्ति, देवताओं का पूजन, माता पिता गुरूजनों की सेवा यज्ञ, दान, तप तथा वर्णाश्रम के अनुसार आजीविका द्वारा ग्रहस्थ का निर्वाह एवं शरीर सम्बन्धी खान पान इत्यादिक जितने कर्तव्य कर्म है उन सबमें इस लोक और पर लोक की सम्पूर्ण कामनाओ के त्याग का नाम सब कर्मो के फल का त्याग है।

● परमगति कैसे प्राप्त हो?

इन्द्रियों को विषयों से हटाकर तथा मन को हृदय में स्थिर करके और अपने प्राण को मस्तक में स्थापन करके योग धारण में स्थित हुआ जो पुरूष 'ॐ' इस एक अक्षर रूप ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और उसके अर्ध स्वरूप 'मैं' का चिन्तन करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है, वह पुरूष, परम गति को प्राप्त होता है।

● नियतकर्म क्या है?

प्रकृति के अनुसार शास्त्र विधि से नियत किये हुये जो वर्णाश्रम के धर्म और सामान्य धर्म रूप स्वाभाविक कर्म हैं, उनको ही यहां स्वधर्म, सहजकर्म, स्वकर्म, नियतकर्म, स्वभाव नियत कर्म इत्यादि नामों से कहा है।

● अकर्म किसे कहते है।

बिना अभिमान के किया हुआ कर्म वास्तव में अकर्म ही है। इस लिये वह पुरूष पाप से नहीं बंधता है। कर्म से 'मैं' को अलग कर लेने पर अकर्म कहलाता है।

● अनन्यशरण किसे कहते है

लज्जा, भ्रम, मान, बड़ाई और आसक्ति को त्याग कर एवं शरीर और संसार में अहंता सवं ममता से रहित होकर केवल एक परमात्मा को ही परमआश्रय मानकर एवं भक्ति और प्रेम पूर्वक निरन्तर भगवान के नाम, गुण, प्रभाव और स्वरूप का चिन्तन करते रहना एवं भगवान का भजन, स्मरण रखते हुये ही उनकी आज्ञानुसार कर्तव्य कर्मो का नि:स्वार्थभाव से केवल परमेश्वर के लिये आचरण करना यह सब प्रकार से परमात्मा के अनन्यशरण होना है।

● अभाव, प्रभाव और भाव किसे कहते है

एक छोटा व्यक्ति अभाव में जी रहा है, और एक पूंजीपति भी अभाव में जी रहा है। दोनो के जीने में कोई भेद नहीं है। गरीब वह नहीं है, जो धन से हीन है। धन से हीन को धनहीन कहते है, गरीब नहीं। गरीब वह है, जो अभाव में जी रहा है। जो अभाव से ऊपर उठ जाते है, वे प्रभाव में जीने लगते है। जो प्रभाव से भी ऊपर उठते है, वह आशा के मूल बिन्दु पर जीने लगते है। और जो अभाव, प्रभाव और आशाओं से ऊपर उठ जाते है, वे भाव के शिखर पर जीते है। और जो भाव पर जीते है, वे ही प्रभु तक पहुंचते है।

● ऋतम्भरा प्रज्ञा किसे कहते है

ऋतम्मरा प्रज्ञा से अपने आत्मा स्वरूप का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। जब केवल साक्षी भाव से अपने दर्शक मात्र रहने का बोध हो वही ऋतम्भरा बुद्धि कहलाती है।

● अनुभव और ज्ञान का क्या संबंध है

– अनुभव 'स्व' का होता है, ज्ञान 'पर' का होता है।

विचार जब शान्त हो जाते है तो मन का दरवाजा खुलता है और मन जब शान्त हो जाता है तब बुद्धि का दरवाजा खुलता है। बुद्धि जब शान्त होती है तब विवेक का दरवाजा खुलता है विवेक जब शान्त होता है तो अनुभव का दरवाजा खुलता है अनुभव जब शान्त होता है तब साक्षी का दरवाजा खुलता है।

नोट 1 – "शरीर रूपी कमरे में बल्ब रूपी बुद्धि में विवेक रूपी फिलामेंट जब जलता है, तो हमे बुद्धि रूपी बल्ब भी दिखाई देता है, और विवेक रूपी फिलामेण्ट भी दिखाई देता है।" फिर शरीर रूपी कमरे में जो वस्तुये जिस तरतीव में रखी होती है, वैसी ही दिखाई देने लगती है। बुद्धि के प्रकाश को विवेक कहते है।

नोट 2 – दर्पण में जब हम देखते है तो हमें प्रतिबिम्ब ही दिखाई देता है और प्रतिबिम्ब सदैव हमारे होते है, हम उसमें नहीं होते है। यदि हम अपनी मांग

निकालना चाहे, तो प्रतिबिम्ब की मांग निकालने से हमारी मांग नहीं निकलेगी। अर्थात सिद्ध होता है कि हम प्रतिबिम्ब से सदैव विपरीत दिशा में होते है। इस तरह अनुभव के दरवाजे में जो कुछ भी हम देखते है वह हमारा स्वरूप होता है, हम नहीं होते। स्वयं को पाने के लिये हमे अनुभव के दर्शन के विपरीत बढ़ना पड़ेगा तब स्वयं का अनुभव होगा, अर्थात प्रतिबिम्ब जब शान्त हो जाता है तब स्वयं का अनुभव होता है।

● 'ॐ' क्या है?

– 'अ' 'उ' और 'म' इन तीन अक्षरों के युग्म स्वरूप का नाम 'ॐ' है।

– मान्डूक्य उपनिषद के अनुसार भूत, वर्तमान एवं भविष्य 'ॐ' ही है। आत्मा या ब्रह्म के चार पद है। 'अ' 'उ' और म क्रमशः जाग्रत, स्वप्न एवं सुसुप्ति अवस्था के प्रतीक है। वहीं चौथा पद 'शब्दातीत' है–यही तुरियावस्था है।

अ – जाग्रत अवस्था, वैश्वानर, स्थूल शरीर, ऋग्वेद का प्रतीक

उ – स्वप्नावस्था, तैजस, सूक्ष्म शरीर, यर्जुवेद का प्रतीक

म – सुसुप्तावस्था, प्रज्ञान, कारण शरीर, सामवेद का प्रतीक

1. जाग्रत अवस्था
2. स्वप्नावस्था
3. सुसुप्ति
4. तुरियावस्था
5. पूर्ण ब्रह्म या ब्राह्मन

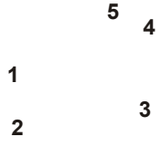

ॐ की ध्वनि पर "ध्यान" लगाने मात्र से ही, मूल लक्ष्य प्राप्त हो सकता है। ॐ ही समस्त वेदों का मूल है। 'ॐ' ही परम ज्ञान है। सारीर ध्वनियाँ यहीं से शुरू हुयीं।

● दीर्घ गायत्री क्या है?

ॐ भूर। ॐ भुवः । ॐ स्वः। ॐ महः। ॐ जनः। ॐ तपः। ॐ सत्यम

ॐ तत् सवितुर वरेण्यं। भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।

ॐ अपोः ज्योतिः रसोआम्रितम ब्रह्मा। भूर भुवास स्वर ॐ।।

यही सात लोक, हमारे शरीर में सात चक्रों के रूप में है। गायत्री मंत्र करते समय मूलाधार से सहस्रार तक ध्यान करें। अन्तिम लाइन का अर्थ है–

उस 'रस' स्वरूप अमृत रूपी ब्रह्म की 'ॐ' ज्योति ही मुझे प्रकाशित कर रही है। इन तीनों लोकों– भू, भुवः, स्वः में ॐ ही दैदैप्यमान है। इसी गायत्री को प्राणों के साथ जोड़ना ही यज्ञ है।

● बन्धन और मुक्ति क्या है?

पदार्थो, वस्तुओं, व्यक्तियों की वासना (उपभोग की स्मृति) बन्धन है। 'मैं उससे अलग हूँ' यही बन्धन, वासना समाप्त होना मुक्ति है। 'बन्ध' हमेशा 'सम्बन्ध' में होते है ही बन्धने का कारण है।

● वासना कैसे समाप्त हो? क्या सम्भव है?

जब जान गये, कि जो दिखाई दे रहा है, वह अस्थिर है, नष्ट हो जायेगा तो यही ज्ञान, जब योग के साथ दृढ़ कर लें और बर्हिमुखी इंद्रियों को धारणा एवं प्रत्याहार से अन्दर मोड़ लें। चित्त रूपी नदी में मन और बुद्धि को समाहित कर लें। यह सम्भव है– बस सोच डैवलप करनी है।

- **भगवान किसे कहते हैं ?**

  जो समस्त ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य का भण्डार होतथा जो विद्या और अविद्या का ज्ञाता हो तथा जो प्राणियों के आने – जाने का और जन्म मरण का साक्षी हो।

- **आत्मा क्या है?**

  जो मन की वृत्तियों का ज्ञाता हो। यही ब्रह्ममण है।

- **असूय दोष किसे कहते हैं?**

  दूसरे के गुणों को भी दोष रूप में देखना।

- **यह असूय दोष कैसे उत्पन्न होता है?**

  यह क्रोध तथा लोभ से उत्पन्न होता है।

- **यह असू दोष कैसे नष्ट होता है।**

  सब जीवो पर दया से, विराग से तथा आत्म ज्ञान से।

- **काम कैसे बढ़ता है।**

  संकल्प से।

- **क्रोध कैसे बढता है?**

  लोभ से और दूसरों मे दोष देखने से। इच्छाओं की आपूर्ति का नाम ही क्रोध है।

- **ज्ञान किसे कहते है?**

  जिससे जाना जाय वह ज्ञान कहलाता है। ज्ञान निर्गुण निराकार परमात्मा का रहस्य जान लेना है। वेद शास्त्र मे बताये गये गुण, प्रभाव रहस्य आदि को बुद्धि मे यथार्थ रूप से जान लेना है।

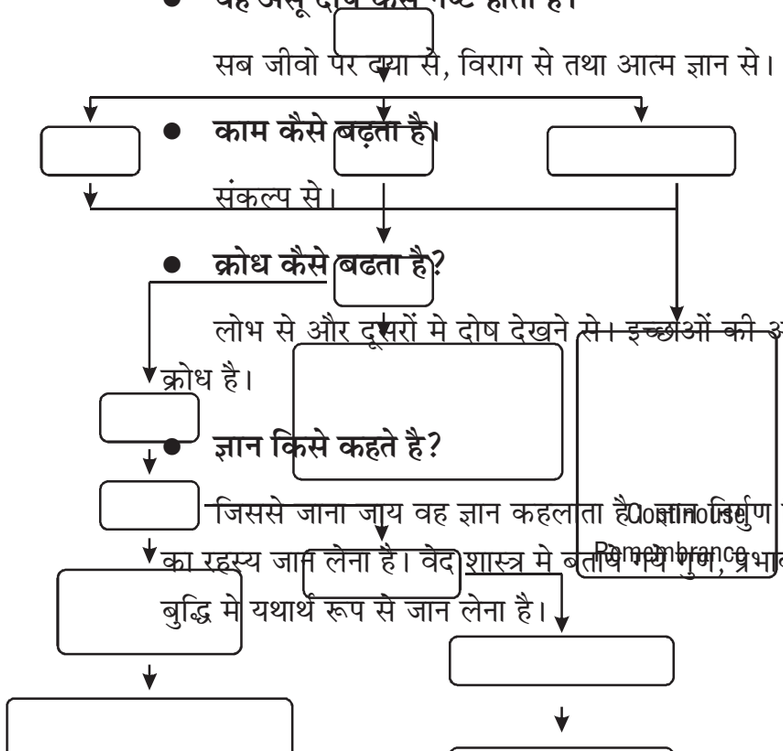

- **विज्ञान किसे कहते है?**

जो आचरण मे आये वह विज्ञान कहलाता है। सगुण साकार परमात्मायथार्थ तत्व को जान लेना ही विज्ञान है। भगवान के गुण, प्रभाव, लीला,नाम रहस्यादि को साधन के अभ्यास से अनुभव सिद्ध कर लेना इत्यादि।

- **साधन कब बढ़ता है?**

जब हृदय में ऊँचा भाव हो।

- **ऊँचा भाव कब होता है।**

जब साधन का अभ्यास विशेष हो।

- **दैवी सम्पदा के गुण हृदय मे कब आते है?**

साधन और भाव दोनों जैसे जैसे अधिक बढ़ते है वैसे वैसे सदगुण हृदय मे आते जाते है। सर्वजन हिताय, जिज्ञासा, तितीक्षा एवं ध्यान यही दैवीय सम्पदायें हैं।

- **असली धन सम्पत्ति क्या है?**

शम – शांत मन, आसवित रहित

दम – इन्द्रिय निग्रह (देखो तुम इन्द्रियों के बस में हो, या इन्द्रियों तुम्हारे)

तितिक्षा – धैर्य (जजमैंटल न होना, समभाव से परिस्थतिओं को देखना)

उपरति – संतोष, (अपने में खुश होना, दूसरे की स्वीकृति ककी अपेक्षा न रखना)

श्रद्धा – विवास, (कि तुम वही हो – पूर्ण चेतना)

इन्हीं पाँच धनों का संचय करके आधात्मिक यात्रा पर निकलना है।

- **एक दूसरे का पारस्परिक प्रेम कैसे नष्ट हो जाता है?**

नम्रता, दीनता तथा निष्कपटता न रखने से।

- **भक्त के परिचय के क्या लक्षण है?**

नम्रता, दीनता तथा सरलता का रहना तथा अभिमान निन्दा से दूर रहना आदि।

- **क्रोध नष्ट कैसे होता है?**

क्षमा से।

- **मोह कैसे बढ़ता है?**

अज्ञान से।

- **मोह नष्ट कैसे होता है?**

महात्माओं के सत्संग से।

- **बुरे कर्मो से निवृति कैसे होती है?**

जीवों पर दया करने से और मन मे वैराग्य रखने से।

- **मत्सरता दोष कैसे आता है?**

दुष्टो के संग से।

- **मत्सरता दोष कैसे दूर हो जाता है?**

संतो की सेवा से।

- **मद कैसे हो जाता है?**

उत्तम कुल, अधिक जानकारी एवं ऐश्वर्य का अभिमान होने से।

- **मद कैसे नष्ट होता है?**

  जिन कारणो से मद होता है उनकी असलियत समझ लेने से।

- **निन्दा दोष कैसे उत्पन्न हो जाता है?**

  भृष्ट, नीच पुरूषो के अप्रमाणिक द्वेष पूर्ण बचनो के सुनने से।

- **राग क्या है?**

  विषयों मे मन का बार-बार जाना ही राग है।

- **द्वेष क्या है?**

  मन का अप्रिय पदार्थ, कर्म, विषयों मे विपरीत भाव रहना।

- **सब दानियों मे श्रेष्ठ दानी कौन है?**

  जो दूसरो को सम्मान दान देता है।

- **ध्यान क्या है?**

  मन का विषय रहित हो जाना।

- **पवित्रता क्या है?**

  इन्द्रियो को शास्त्र विरूद्ध भोगों से प्रथक रखना ही पवित्रता है।

- **समर्पण क्या है?**

  अपना और अपनो का भरोसा छोड़ कर प्रभु का भरोसा करना ही समर्पणहै?

- **दरिद्री कौन है?**

  जिसकी तृष्णा बड़ी है वही गरीब है वही दरिद्री है।

- **धनी कौन है?**

  जिसको हर प्रकार का संतोष हो गया है वही धनी है।

- **संतोष क्या है।**

  सन्तोष माने जिसकी सभी चाह समाप्त हो जाय। चाह जब अन्दर जाती है, तो आह बन जाती है,यदि कोई अचाह हो जाये तो संतोष आ जायेगा।

- **भगवान की सच्ची आराधना का क्या स्वरूप है?**

  मन से प्राणीमात्र का अनिष्ट चिन्तन न करना। वाणी से झूठ, कठोर निरर्थक शब्दो का उच्चारण न होने देना एवं शरीर से किसी को भी किंचिन्मात्र कष्ट न देना।

- **मूर्ख कौन है?**

  जो देह मे अभिमान रखता है।

- **चतुर कौन है?**

  जिसने अपने जीवन का मुख्य लक्ष्य जान लिया हो कि जीवन का मुख्य लक्ष्य भगवत प्राप्ति करना है।

- **काम को कैसे जीते?**

  संकल्पो के त्याग से।

- **संकल्प किसे कहते है?**

  सांसारिक वस्तुओं की भगवान से अलग सत्ता मानकर बुद्धि से रागद्वेष पूर्वक चिन्तन करने का नाम संकल्प है।

- **क्रोध को कैसे जीतें?**

  कामनाओं के त्याग से।

- **लोभ किसे कहते है?**

अनुचित धन की लालसा रखना। जैसे तैसे धन मिले चाहे धर्म से या अधर्म से बस यही लोभ है।

- **निद्रा कैसे जीते?**

सात्विक पदार्थो के सेवन से।

- **राग किसे कहते है?**

सुखानुरागी राग है। सुख भोग के अनन्तर जो सुख को पुनः भोगने की इच्छा होती है उसका नाम राग है।

- **अस्मिता क्या है?**

दृश्य (प्रकृति) एवं दर्शन (पुरूष) इन दोनो शक्तियो की एकरूपता ही अस्मिता है। अविवेकवश इनमें एकत्व भावना न होने से ही पुरूष अपने का कर्ता भोक्ता मानने लगता है और यही उसके जन्म मरण एवं संसार बंधन का कारण है।

- **अविद्या क्या है?**

मन बुद्धि आदि अनात्मा में आत्मबुद्धि ही अविद्या है।

- **विपर्यय किसे कहते है?**

वस्तु के मिथ्याज्ञान को विपर्यय कहते है, संशय भी इसी के अन्तर्गत है।

- **विकल्प किसे कहते है?**

जिसके द्वारा शब्द ज्ञान तो हो किन्तु किसी वस्तु का स्फुरण न हो उसे विकल्प कहते है।

- **निद्रा क्या है?**

अभाव प्रतीति का आलम्बन करने वाली वृत्ति निद्रा है, इसमें जागृत और स्वप्न अवस्थाओ की सम्पूर्ण विशेष वृत्तियों का अभाव हो जाताहै। परन्तु नींद में वृत्ति का अभाव नहीं कहा जा सकता क्योंकि सोकर उठने पर ऐसी वृत्ति होती है कि मै खूब सोया। ऐसी स्मृति पूर्ववर्ती अनुभव का ही परामर्श करती है। अतएव उस अवस्था मे भी वृत्ति की सत्ता माननी होगी।

- **स्मृति क्या है?**

अनुभूत विषय का अनुसन्धान ही स्मृति है।

- **मोक्ष क्या है?**

सांख्य और योगमत मे दृष्टा की स्वरूप स्थिति ही मोक्ष है।

- **विवेकख्याति की स्थित क्या है?**

विवेक ख्याति होने पर जब उसे अपने शुद्ध स्वरूप का बोध हो जाता है तो वह गुणो के बंधन से मुक्त हो जाता है पर वैराग्य के प्रभाव से साधक इस स्थित से भी विरक्त हो जाता है और प्रकृति से संबन्ध न रहने के कारण वह पुरूष अकेला रह जाता है। इस अकेलापन और केवलता के कारण इस स्थित को कैवल्य कहा गया है।

पुरूष को भोग और मोक्ष दिलाने के कार्य से निवृत्त हुये गुणों का अपने कारण में लीन हो जाना ही कैवल्य है। इस समय चिति शक्ति अपने स्वरूप मे स्थित हो जाती है। इस समय इस स्थित मे प्रकृति आदि दृश्य वर्ग की तो निवृति हो जाती है किन्तु पुरूष अपने मे स्थित रहता है। जैसे दीपक घट इत्यादि पदार्थो की स्थित मे तो उन्हे प्रकाशित करता है और जब वे नहीं रहते तो स्वंय ही प्रकाशवान होता है।

अतएव इस समय पुरूष अपनी महिमा में प्रतिष्ठित रहता है।

- **परमगति क्या है?**

  परमतत्व की उपलब्धि ही तो परमगति है।

- **सांख्ययोग किसे कहते हैं?**

  इन्द्रियाँ अपने अपने विषयों मे बर्तती है। मैं सर्वथा अकर्ता हूँ। इस प्रकार समझकर परमात्मा मे अभिन्न भाव से स्थित रहने को साँख्य योग कहते है।

- **निष्काम कर्म योग किसे कहते है?**

  सिद्धि, असिद्धि, लाभ अलाभ मे समभाव रहकर अहंकार ममता फलेच्छा का त्यागकर भगवत हेतु किये जाने सम्पूर्ण वेदशास्त्र विहित कर्म का निष्काम कर्म योग कहते है।

- **दोनो योग निष्ठाओ का फल क्या है?**

  अन्त: करण मे निर्भरता पैदाकर ज्ञान को उत्पन्न कर देना है।

- **ज्ञान से क्या होता है?**

  दु:खो की निवृति होकर परमानन्द स्वरूप अभिन्न रूप से मिल जाता है।

- **परमात्मा का ज्ञान न होने देने वाले आवरण क्या है?**

  1. मन – पाप

  2. विक्षेप – चंचलता

  3. आवरण – अज्ञान

- **सच्चे गुरू के क्या लक्षण है?**

  जो वेद शास्त्रों के यथार्थ तत्व को जानता हो और परमात्मा के स्वरूप मे लीन एवं जिसमें शान्ति, निर्लोभता, निष्कामता, दया आदि सद्गुण हो।

- **सच्चे शिष्य का क्या लक्षण है?**

  जो मान अपमान से रहित होकर हृदय मे डाह अहंकार न रखता हो। अपने से बड़ो मे नम्रता, दीनता धारण किये हुये श्री गुरू की आज्ञा मे तत्पर रहता हो।

- **परमात्मा किसको सुलभ है?**

  अनन्य भाव से चिन्तन करने वाले को।

- **भ्रम कैसे होता है?**

  अज्ञान से।

- **अज्ञान कैसे दूर हो?**

  परमात्मा के स्वरूप चिन्तन मे प्रमाद, आलस्य न करने से।

- **प्रमाद क्या है?**

  अन्त:करण की व्यर्थचेष्टाओ का नाम प्रमाद है अन्त: करण से व्यर्थ चिन्तन करना और इन्द्रियो का व्यर्थ कर्मो मे लगाना ।

- **आलस क्या है?**

  शक्ति होने पर भी कर्तव्य कर्मो मे न लगना।

- **भक्ति क्या है?**

  परमेश्वर मे परम प्रेम हो जाना।

- **परम प्रेम का लक्षण क्या है?**

  परम प्रिय परमेश्वर के अलावा अन्य लौकिक भोग वस्तुये प्रिय न लगना।

- **कलियुग मे कौन सा साधन श्रेष्ठ है ?**

  भावपूर्वक नाम संकीर्तन।

- **सात्विक बुद्धि कौन है?**

जो कर्तव्य, अकर्तव्य, बंधन, मोक्ष, धर्म, अधर्म का ठीक ठीक निश्चय कर सकती है।

- **राजस बुद्धि कौन है?**

जो धर्म, अधर्म, कर्म, विकर्म का ठीक ठीक निर्णय नहीं कर पाती हैं।

- **तामस बुद्धि कौन है?**

जो धर्म को अधर्म, कर्तव्य को अकर्तव्य, अधर्म को धर्म, अकर्तव्य समझ लेती है।

- **मन का वस में करने के कौन कौन से साधन है?**

श्वाँस प्रश्वास की गति के साथ नाम जप का लक्ष्य रखने से मन वस मे हो जाता है। नाम के ध्यान व अर्थ चिन्तन से भी मन वस मे हो जाता है।

- **असंभावना क्या है?**

ब्रह्म नहीं है इस प्रकार का संशय होना।

- **असम्भावना का नाश कैसे हो?**

वेदान्त वाक्यो को बार बार सुनने से।

- **विपरीत भावना क्या है?**

मै देह हूँ, इस प्रकार की भावना होना।

- **संशस क्या है?**

ब्रह्म है या नहीं, इस प्रकार का संदेह होना।

- **संशय का नाश कैसे हो?**

चित्त वृत्तियों का निरोध करके ब्रह्म रूप का ध्यान करने से।

- **वैराग्य किसे कहते है?**

वैराग्य का अर्थ है विषयों में चित्त की अनाशक्ति अर्थात विषयों से परे हो जाना।

- **परा वैराग्य किसे कहते है?**

गुणो से भी वैराग्य हो जाना परा वैराग्य है।

- **दीक्षा के प्रकार**

यह निम्न पाँच प्रकार हैं।

1. मंत्र दीक्षा, 2. बोध दीक्षा, 3.कलावती दीक्षा, 4. स्पर्श दीक्षा, 5. चाक्षुषी दीक्षा

- **मोह क्या है?**

अन्त:करण के भ्रम का नाम मोह है।

- **कर्म के प्रकार क्या है?**

1. संचित कार्य – पहले जन्मो का जो किया हुआ है।

2. प्रारब्ध कार्य – संचित कर्म ही समय के साथ प्रारब्ध बनकर आ जाते है, प्रारब्ध कर्मो का ही दूसरा नाम भाग्य है।

3. क्रियमाण कर्म – अब जो किया जा रहा है उसे कियमाण कर्म कहते है इसे आगे भोगना पड़ेगा।

नोट – प्रारब्ध कर्मो का क्षय भोग से होता है।

- **कर्म, विकर्म, अकर्म क्या है ?**

1. कर्म – वह जो वेदों मे बताया गया है कर्म कहलाता है।

2. विकर्म – जो वेदो के विपरीत है वह विकर्म है।

3. अकर्म – वह कर्म जो भगवान को अर्पित कर दिया गया है अकर्म कहलाता है।

- **गायत्री क्या है?**

गायत्री आदि शक्ति है, गायत्री के रूप में स्वयं ब्रह्म ही है। गायत्री ब्रह्मस्वरूपिणी है। गायत्री ब्रह्म का क्रिया भाग है। क्रियाशील चेतन शक्ति का नाम गायत्री है। गायत्री वेदमाता है, वेद जननी है।

- **जीवात्मा, परमात्मा ए गुरू तीनो के शरीर मे कहाँ वास माने गये है।**

जीवात्मा हृदय में वास करता है।

गुरू सहस्त्रदल में वास करता है।

परमात्मा नेत्र में वास करता है।

- **ब्रह्मवेत्ता कौन है?**

जो ब्रह्म की जाने फिर ब्रह्म की बात करें वही ब्रह्मवेत्ता कहलाता है। जिसका मोह सर्वथा नष्ट हो गया है, जो कामना रहित है ऐसा स्थितप्रज्ञ ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म मे स्थित रहता हुआ न तो प्रिय को पाकर हर्षित होता है और न अप्रिय को पाकर उद्विग्न ही होता है। जिस बुद्धि मे स्थिरता है अर्थात जो बुद्धि एक जगह टिक गयी है वही निश्चयात्मिका बुद्धि ही स्थितप्रज्ञ है।

- **किसके प्राण उत्क्रमण नहीं करते?**

जिनके पाप सर्वथा नष्ट हो गये है जो सब प्राणियो के हित मे संलग्न है तथा जिसके सभी संशय नष्ट हो चुके है ऐसे महापुरूष शान्त ब्रह्म को प्राप्त हैं उनके सब ओर ब्रह्म ही वर्तता है। एसे कामना रहित, निष्काम, पूर्णकाम, और केवल परमात्मा को ही चाहने वाले के प्राण उत्क्रमण नही करते। ऐसे महापुरूषों के सूक्ष्म शरीर ब्रम्हलोक मे ॐ कहता हुआ ऊपर बढ़ जाता है और ब्रह्म मे लीन हो जाता है।

- **बीज, योगमाया एवं कीलक क्या है?**

आत्मा बीज है।

हंसः शक्ति योग माया है।

सोऽम् कीलक है।

- **हंस शक्ति क्या है।**

जीवात्मा के साथ जो प्रकाश करने की शक्ति है वह है हंस शक्ति।

- **कर्ता – भोक्ता कौन है?**

पूर्व संचित वासना से युक्त होकर जीवात्मा ही कर्ता भोक्ता है।

- **योग माया कौन है?**

ब्रह्म की आधाशक्ति का नाम योग माया है। इसे व्यक्तिगत शक्ति भी कहते है।

- **सरल कौन है?**

स – माने सीता जी

र – माने रामचन्द्र जी

ल –माने लक्ष्मण जी

- **मुख्य प्राण की सुषुप्ति मे स्थित क्या है?**

सब इन्द्रियाँ एवं अन्त: करण सुषुप्ति के समय विलीन हो जाते है उस समय भी मुख्य प्राण जागता रहता है उस पर मिटाकर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

- **अष्ट सिद्धि क्या है?**

अणिमा, गरिमा, लधिमा, महिमा, प्राप्ति, प्रकाम्य, ईशत्व, वशीत्व।

- **नवधा भक्ति?**

1.श्रवण 2. कीर्तन 3.विष्णू स्मरण 4.पादसेवन 5. अर्चन 6. वन्दन 7.दास्य 8. सख्य 9. आत्म निवेदनं

- **पूजा के भेद?**

पाषाण पूजा निम्न पूजा है। इसी को मूर्ति पूजा कहते है।

यह तीसरे न. की है।व्यक्ति पूजा मध्यम श्रेणी की है तथा विराट पूजा उत्तम श्रेणी की है विराट पूजा बुद्धि से होती है सबको बृह्म का स्वरूप मानकर नमस्कार करते है जब तक सबमें बृह्म का दर्शन नहीं हो तब तक हम मुक्त नहीं है अर्थात जीवन मुक्त नही है।

- **अविद्या और विद्या क्या है?**

अविद्या वह है जो भेद उत्पन्न करे। विद्या वह है जो भेद मिटा दे अथवा विधा वह है जो अविद्या का नाश करे।

- **जड़ क्या है?**

जो न अपने को जाने और न दूसरे को जाने वह जड़ है।

- **इन्द्रियो की शुद्धि कैसे हो?**

तप से अर्थात इन्द्रियों को विषयों से रोक कर सत्कर्म में लगाने से।

- **आत्म शुद्धि कैसे हो?**

आत्म विद्या या ब्रह्म विद्या की जानकारी से।

- **मुक्ति कितने तरह की होती है?**

1. सारूप्य – वही रूप मिल जाना

2. सायुज्य – देह के सहित जाना

3. सालोक – उसी लोक मे पहुॅच जाना

4. सामीप्य – उनके समीप रहकर सेवा करना सेवा समीप मे पहुॅचकर की कर सकता है।

- **इच्छा क्या?**

किसी वस्तु को चर्मचक्षुओ से देखने पर उसको लेने की जिज्ञासा को इच्छा कहते है। अव उसमे राग बना।

उदाहरण एवं विश्लेषण –

1. सुन्दर वस्तु देखी तुरन्त राग हो गया हम लेंलें।

2. इच्छा का स्थान नेत्र है।

3. इसका संमन्ध वर्तमान काल से होता है।

4. इच्छा मे राग होता हैं।

5. इतएव इच्छा का परित्याग कर दे।

- **आत्मा एक है या अनेक?**

आत्मा एक है।जैसे – जल के पात्रो मे एक सूर्य का प्रतिबिम्ब अनेक रूप से भासता है वैसे ही एक आत्मा भिन्न भिन्न शरीरोपाधियों मे अनेक रूप से भास रहा है।

- **यदि आत्मा एक है तब एक शरीर की आत्मा के सुखी/दु:खी होने पर अन्य शरीरों की आत्मा जो एक ही है का जन्म मरण तथा सुख दु:ख भी साथ ही साथ होना चाहिये?**

जैसे एक ही आकाश अनेक घड़ो मे व्यापक रूप से स्थित है परन्तु एक घड़े के फूट जाने पर अन्य घड़े नही फूट जाते तथा एक घड़े के बनने पर अन्य घड़े नहीं बन जाते और घटादि उपाधियो के बनने बिगड़ने से आकाश का कोई सम्बन्ध नहीं है वैसे ही शरीरोपाधियों के जन्म नाश से आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है।

वह तो सर्वथा असंग है क्योकि आत्मा तो शरीर के जन्म नाश के पहले अखण्ड भाव से विद्यमान है। रहा सुखी दुखी रहना आदि जैसे एक घड़े मे धूम, धुलि भर दूने से सब घड़ो मे धूलि नहीं भर जाता, वैसे ही एक शरीर के अभिमानी आत्मा के सुखी दु:खी होने पर सब शरीरो की आत्मा एक साथ सुखी द:ुखी नहीं होता है। वस्तुत: आत्मा सहज सुख रूप है और सुख दुख आदि धर्म तो अन्त:करण के है। जैसे घड़े के धूलि से घटाकाश सर्वथा असंग है। वैसे ही आत्मा शरीर के धर्मो से असम्बद्ध है।

जैसे एक देह के हाथ पाँव आदि में एक ही आत्मा समान भाव से नख शिख तक व्याप्त है, परन्तु हाथ मे दुख होने पर पाँव मे दु:ख नही होता है और पाँव मे दु:ख होने पर हाथ में दु:ख नही होता। स्पष्ट तात्पर्य यह हुआ कि एक अंग मे दु:ख सुख होने पर अन्य अंग मे दु:ख सुख नहीं होता वैसे ही सभी शरीरों मे एक आत्मा के रहने पर एक शरीराभिमानी आत्मा सुखी दुखी नही होता है।

- **क्या जीवात्मा परमात्मा से भिन्न है?**

नहीं।

जैसे आकाश मे रहने वाला चन्द्रमा अनेक जलपात्रो मे अनेक रूप से भासता है वैसे एक परमात्मा अनेक शरीरोपाधियो मे जीव रूप से प्रतिविम्बित होकर अनेक रूप से भास रहा है। जैसे जलपात्रो मे प्रतिबिम्ब चंद्र आकाश मे स्थित चन्द्र से भिन्न नहीं है। वैसे ही शरीरो में स्थित जीवात्मायें परमात्मा या ईश्वर से भिन्न नहीं है।

- **क्या आत्मा अकर्ता है?**

हाँ आत्मा अकर्ता है।

जैसे – स्फटिक मणि नील, पीत, लाल, हरे, आदि रंग के संयोग से नीली, पीली, लाल, हरी प्रतीत होती है परन्तु मणि तो इन धर्मो से सर्वथा अलिप्त है एवं निर्मल स्वच्छ है वैसे ही आत्मा निर्मल स्वच्छ होने पर भी शरीर के सम्बन्ध से शरीर की क्रियाओं के द्वारा तदाकाररूप भास रहा है।

- **क्या स्थूल, सूक्ष्म कारण शरीरों से आत्माबद्ध है?**

नहीं

जैसे कि आकाश घटमठादि उपाधियों मे व्यापक होता हुआ उसका जन्म नाशादि क्रियाओं से सर्वथा अलग है वैसे ही आत्मा तीनों शरीरों तथा उनके धर्मो से अलिप्त है।

- **क्या परमात्मा से उत्पन्न हुये प्रपंच की भिन्न सत्यता है?**

नहीं

जैसे स्वर्ण अथवा लोहे से बने हुये पदार्थ व्यवहार मे भिन्न भिन्न नाम रूप वाले होने पर भी अन्त मे स्वर्ण एवं लाहे के रूप ही है वैसे ही ब्रह्म से उत्पन्न हुआ प्रपंच भी नाम रूप जाति गुण क्रिया वाला होने पर भी आदि अन्त मे ब्रह्म रूप ही है।

- **उत्तम भक्त का क्या लक्षण है?**

जो समस्त प्राणियों की प्रभुमय और प्रभु को सर्वप्राणिमय देखता है और जो संसार के सुख दु:ख आदि धर्मो से लिप्त नहीं होता जिसके हृदय मे अपनी पराई भेद बुद्धि नहीं होती तथा जो त्रिलोक के प्रलोभन प्राप्त होने पर भी भगवान के नाम का त्याग नहीं करता।

- **मध्यम भक्त का क्या लक्षण है।**

जो ईश्वर में अनन्य प्रेम और उनके प्रिय भक्तों मे निष्कपट मित्र भाव एवं भोले पुरूषों मे कृपा भाव तथा बैरियों एवं नास्तिको मे उपेक्षा भाव रखता है वह मध्यम श्रेणी का भक्त कहलाता है।

- **साधारण भक्त का क्या लक्षण है?**

जो सर्वदेशीय भगवान को केवल मूर्ति में ही एक देशीय भाव रखकर मूर्तिपूजा मे ही लगा रहता है और भगवान के चैतन्य रूप भक्तों मे प्रेम पूज्य भाव नही रखता।

- **भक्त कितने प्रकार के होते है?**

1. आर्त 2. जिज्ञासु 3. अर्थार्थी 4. ज्ञानी

- **आर्त भक्त का क्या लक्षण है?**

जो सांसारिक भय कष्टों से दुखित होकर अविचल भाव से अपने आपको परमात्मा मे समर्पण कर देता है वह आर्तभक्त कहलाता है।

- **जिज्ञासु भक्त का क्या लक्षण है?**

जो जन्म मरण रूप बन्धन से छुटकारा पाने के लिये परम के जानने की उत्कट इच्छा रखता है वह जिज्ञासु भक्त कहलाता है।

- **अर्थार्थी भक्त का क्या लक्षण है?**

जो किसी उद्देश्य को लेकर परमात्मा का भाव पूर्वक भजन करता है वह अर्थार्थी भक्त कहलाता है।

- **ज्ञानी भक्त का क्या लक्षण है?**

जो विश्व को ईश्वरमय तथा ईश्वर की विश्वमय देखता है वही ज्ञानी भक्त कहलाता है।

- **गुण भेद से तीन प्रकार के भक्तो के क्या लक्षण है?**

अ – सात्विक भक्त – जो फल की इच्छा एवं अहंकार को त्याग कर समस्त क्रियाओ को ईश्वर मे समर्पित कर देता है वह सात्विक भक्त कहलाता है।

ब – राजसभक्त – जो फलेच्छा को धारण कर परमात्मा का भजन करता है वह राजस भक्त कहलाता है।

स – तामस भक्त – जो दूसरों का कष्ट देने व नाश करने के लिये परमात्मा का भजन करता है वह तामस भक्त कहलाता है।

- **जीवनमुक्त कौन है?**

जो रागद्वेश आदि द्वन्दो को त्याग कर संसार का बोध करते हुये स्वयं के मूल स्वभाव में लीन रहता है वह जीवन मुक्त भक्त कहलाता है।

● साक्षी कैसे बने?

इसका पहला भाव तब महसूस करते हैं- जब आप कुछ बोल रहे हो और आपको यह भी पता हो कि आप बोल रहे हैं। शुरू में यह प्रक्रिया कठिन है क्योंकि (Self Concious) हो सकता है। फिर हो जाती है। हम बचपन से बच्चों को डराते हैं अमुक कार्य मत करो, भगवान देख रहा है। पर खुद नहीं मानते हैं। यही दिक्कत है। बस अपनी की जा रही क्रियाओं को देखने का (बिना गुण/दोष के अन्दर बाँधे हुये) अभ्यास करें। इस प्रकार आँख के पीछे आँख, कान के पीछे का कान, स्पर्श के पीछे का स्पर्श बनें। चूँकि वही परम ब्रह्म, परमसत्ता (अद्वैत वेदान्ती) अथवा भगवान कृष्ण (विशिष्टद्वैती) ही साक्षी है तो इस प्रक्रिया से उस परमसत्ता के साथ एकात्मभाव उत्पन्न होगा। चित्तवृत्ति शांत होगी और यही योग है।

● कर्मयोग की आदर्श स्थिति क्या है?

मैं यह कर्म नहीं कर रहा हूँ बल्कि यह मेरे द्वारा हो रहे हैं। ऐसे में फल की कोई कामना नहीं होती। त्यागी भी वही है जिसे परिणाम की इच्छा न हो। अतएव कर्म करते हुये कम आसक्ति न हो। कर्म वैराग्य हो-कर्म संन्यास हो। ईशावास्य उपनिषद का एक श्लोक है-

अन्धं तमः प्रविशनितयेऽविद्यामुणसते

ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायागंरताः

जो अविद्या के पक्षधर हैं, वे अंधकार में रहते हैं और जो विद्या (ज्ञान, योग) के साथ है वे भी इसी अंधकार में रहते है। अतएव ज्ञान, कर्म एवं भक्ति का जीवन में जिसने Balance कर लिया उसी का कल्याण सम्भव है। जिसने जान लिया कि में कर्त्ता नहीं केवल माध्यम हूँ वही धन्य है। कर्मयोग भी वही कर पायेगा, जिसका मन शान्त हो चुका है एवं द्वन्द्व रहित हो।

● यह पुस्तक किसको लाभ देगी?

"अहं वद्धो विमुक्तः स्याम् इति यस्यास्ति निश्चयः" जिसने यह निश्चित कर लिया है, कि मुझे बन्धन स्वीकार नहीं है, और अपने आत्मस्वरूप की खोज करनी है। जिज्ञासु, साधक और मुमुक्षु तीन श्रेणियाँ, खोजी की हैं।

जिज्ञासु - ज्ञान चाहता है। हर प्रकार का।

साधक - आध्यात्मिक ज्ञान चाहता है।

मुमुक्षु - मुक्ति चाहता है।

यह पुस्तक जिज्ञासुओं के लिये है।

(2ब) - मिथ्या धारणायें

मिथ्या धारणायें -	ज्ञान मार्ग पर चलने में कुछ मिथ्या धारणायें भी है, जिनसे पार पाना बेहद आवश्यक है।
ब्रह्मचर्य जरूरी है -	असली ब्रह्मचर्य, "ब्राह्मण" के साथ एकाकार होने की भावना है न कि बाहरी ब्रह्मचर्य जो कि बलपूर्वक लाने की कोशिश है।
कर्मनाश जरूरी है -	जिस प्रकार पौधे को पानी देने पर पौध और फैलता है। उसी प्रकार 1 कर्म का नाश होने पर 10 और उत्पन्न हो जायेंगे। हमें कर्म से "कर्ताभाव" हटाना है। इससे स्वयं कर्मनाश हो जायेगा।
स्वस्थ मन के लिए लिये स्वस्थ शरीर जरूरी है	यह 'विचार' गुणात्मक बढ़ता जायेगा, और सारा जीवन शरीर में ही लगा रह जायेगा।

मन पर नियंत्रण जरूरी है–	संभवनहीं है। दृष्टाभाव से विचारों का प्रवाह कम करना है। एक विचार समाप्त होने एवं दूसरे के शुरू होने के अंतर को बढ़ाना है।
व्रत जरूरी है –	नहीं। "आत्मा निरीक्षण करना है" – यह व्रत जरूरी है।
अगर सभी ज्ञानी हो जायेगें तो सांसारिक कार्य कौन करेगा –	"पहले हो जाओ फिर देखना"। (सांसारिक कार्य यादा बुद्धिमत्तापूर्वक एवं शान्तिपूर्ण ढंग से सम्पन्न होंगे)
बगैर गुरू ज्ञान नहीं–	"यानी खुद को शुरू से ही 'लघु' मानते हो" यदि यह प्रेमवश एवं भक्तिभाव के साथ है तो कल्याण होगा और अगर आलस, प्रमाद एवं घनघोर सांसारिकता के कारण है तो यही नियम बन जायेगी और फिर गुरू न मिलेंगे।
ज्ञान का कोई अन्त नहीं है–	जिस दिन जान जाओगे कि मैं वही ब्रह्म हूँ–यही अन्त (लक्ष्य) है।
कई मार्ग हैं, कौन सा पकड़े ?	ज्ञान मार्ग से 'मैं' और भक्ति मार्ग से 'मेरा' का नाश होता है। तो सारे मार्ग पूरक है। भिन्न–भिन्न नहीं है। बाकी तुम्हारी नजर का दोष है। तुम चलना चाहते ही नहीं हो।
कहाँ से शुरू करें ?	स्तुति, जप, ध्यान, योग, ज्ञान, भक्ति, आत्मालोकन सब एक ही उद्देश्य को लेकर हैं कि वर्तमान क्षण में रहें और मन पर विजय प्राप्त करके आत्मस्वरूप को देख सकें।
माया से पार नहीं पाया जा सकता–	वैराग्य, अभ्यास और 'मौन' से माया को भी पार पा सकते हैं।
क्या ध्यान ब्रह्मबेला में करना है ?	नहीं ! उठते–बैठते, सोते, खाते, पीते, ध्यान में ही रहना है।
जब सब प्रारब्ध से ही होना है तो मिलना लिखा होगा तो मिल जायेगा–	प्रारब्ध/संचित कर्म का सिद्धान्त वाह्य संसार के होना है तो मिलना लिखा होगा तो मिल जायेगा – लिये है। अन्दर की यात्रा के लिये नहीं। अन्दर की यात्रा में कर्म समाप्त करने हैं।
क्या सिद्धियाँ मिलेगी ?	सोचो – यात्रा शुरू की थी 'मैं' और 'मेरा' छोड़ने के लिये। अब फिर 'सोने' की दुकान पर चप्पल माँग रहे हो।
मंदिर जाना जरुरी है –	नहीं, यही शरीर ही मंदिर है और परमात्मा अंदर है। अंदर जाना है।

अध्याय – 3 ➤➤➤

तत्व ज्ञान

भारतीय दर्शन के अनुसार सृष्टि को समझने की कुछ 06 शाखायें हैं।

1. न्याय (गौतम) 2. वैशेषिक (कणाद) 3. सांख्य (कपिल) 4. योग (पातंजलि) 5. पूर्व मीमांसा (जैमिनी) 6. उत्तर मीमांसा (बादरायण)।

उपरोक्त सभी शाखायें कर्म के सिद्धान्त में एवं पुर्नजन्म में यकीन करती है।

1. न्याय :- यह प्रमाण पर आधारित है। जो ज्ञान 5 ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त हो रहा है एवं शब्द प्रमाण के द्वारा भी, वही सत्य है। इस सिद्धान्त के अनुसार जगत सत्य है। यह सिद्धान्त तर्क पर आधारित है।

2. वैशेषिक :- वैशेषिक दर्शन, कणाद ऋषि के द्वारा प्रतिपादित विज्ञान है। यह संसार की objective philosophy है। यह संसार कणों से बना है। यह सिद्धान्त भी न्याय का एक हिस्सा रहा। चूँकि आज हमें ज्ञात है, कि अणु के और भी छोटे कण (electron, proton, neutron) उपलब्ध है। अतएव उनका विवरण इस पुस्तक के उद्देश्य के बाहर का विषय है। अणु से पदार्थ बने एवं ईश्वर, जोकि सर्वोपरि है-उसकी गाइडैन्स में यह संसार बनाया, पाला एवं नष्ट हो रहा है। इस दर्शन के अनुसार सृष्टि का निर्माण एक क्रमबद्ध संरचना है एवं प्राणियों के कर्म के आधार पर उनके नये जन्म एवं मृत्यु के चक्र प्रारम्भ/अन्त होते हैं। कई शताब्दियों तक इसे 'न्याय' दर्शन के साथ मिला दिया गया और "न्यायवैशेषिक" कहा गया।

3. सांख्य :- सांख्य दर्शन, जीवात्मा की स्वतंत्रता को अलग मानता है। 'सांख्य' के अनुसार प्रकृति के 24 तत्व (5 स्थूलभूत- आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी, 5 ज्ञानेन्द्रियाँ, 5 कर्मेन्द्रियाँ, 5 तन्मात्रायें (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध), मन, बुद्धि, अहंकार एवं मूल प्रकृति एवं 1 चेतन पुरुष संसार का निर्माण करते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार कारण (अव्यक्त) से कार्य (व्यक्त) की उत्पत्ति होती है। विश्व का कोई भी पदार्थ/भावना /इमोशन उपरोक्त 21 तत्वों के मन, बुद्ध एवं अहंकार के साथ संयोजन का प्रतिविम्ब हैं। अब मूल प्रकृति के तीन गुणों (सतो, रजो, तमो) के साथ संयोजित होकर अर्थात् उनकी कमी और अधिकता में सृष्टि बनती है। इस प्रकार जब कोई सतोगुणी साधक ध्यान करता है- तो सर्वप्रथम तन्मात्रायें और अहं का साक्षात्कार होता है। किसी भी अन्तः साधना में, शब्दों का सुनाई देना, स्पर्श सुख होना, सुगन्ध आना सांख्य योग का ही प्रतिपादन है। परन्तु जैसा कि विदित है कि वेदान्त की व्याख्या है- कि "जीवात्मा, परमात्मा में कोई अन्तर नहीं है।" परन्तु सांख्य इस सिद्धान्त को नहीं मानता।

सांख्य योग मे, सृष्टि में कार्य-कारण (cause & effect) सम्बन्ध है। मूल प्रकृति ही सारे जड़ संसार को उत्पन्न करती है। यही कार्य कारण संबंध "सत्कार्य-बाद" कहलाता है, एवं बताता है, कि मूल प्रकृति के पंच महाभूतों, ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों के संयोजन से ही इस सृष्टि का निर्माण एवं विनाश हो रहा है, एवं मूल प्रकृति न तो नष्ट की जा सकती है और न ही उत्पन्न की जा सकती है। यह सारी सृष्टि, मूल प्रकृति का ही रूपान्तरण मात्र है।

4. दर्शन :- जहाँ एक ओर सांख्य, केवल मूल प्रकृति के तत्व ज्ञान को प्राथमिकता देता है, एवं ईश्वर में विश्वास न रखते हुये केवल प्रकृति एवं पुरुष की परिकल्पना को प्रतिपादित करता है, वहीं दूसरी ओर योग दर्शन, सांख्य के अतिरिक्त (साथ-साथ) ईश्वर की सत्ता को भी स्वीकार करता है। सांख्य, तत्व ज्ञान पर बल देता है वहीं योग दर्शन साधना पर।

योग दर्शन में शरीर एवं मन की वृत्तियों के निरोध की बात कही गयी है। "चितवृत्ति निरोधः साः योगः"। योग के अष्टांग मार्ग (1. यम 2. नियम 3. आसन 4. प्राणायाम 5. प्रत्याहार 6. धारणा 7. ध्यान 8. समाधि) को मानने पर जीवात्मा अपने मूल स्वरूप को समझ पाती है, एवं संसारिक बंधनों से मुक्त हो जाती है। कैवल्य पद या मोझ की प्राप्ति, योग दर्शन का अन्तिम पड़ाव है।

अष्टांग मार्ग का संक्षेप में विवरण :-

1) यम :- कायिक, वाचिक तथा मानसिक इस संयम के लिए अहिंसा, सत्य, अस्तेय चोरी न करना, ब्रह्मचर्य एवं अपरिग्रह आदि पाँच आचार विदित हैं। इनका पालन न करने से व्यक्ति का जीवन और समाज दोनों ही दुष्प्रभावित होते है।

2) नियम :- मनुष्य को कर्तव्य परायण बनाने तथा जीवन को सुव्यवस्थित करते हेतु नियमों का विधान किया गया है। इनके अंर्तगत शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान का समावेश है। शौच में बाह्य तथा आन्तर दोनों ही प्रकार की शुद्धि समाविष्ट है।

3) आसन :- पतंजलि ने स्थिर तथा सुखपूर्वक बैठने की क्रिया को आसन कहा है। परवर्ती विचारकों ने अनेक आसनों की कल्पना की है। वास्तव में आसन हठयोग का एक मुख्य विषय ही है। 'हठयोग प्रदीपिका' 'घेरण्ड संहिता' तथा 'योगशिखोपनिषद्' में विस्तार से इनका वर्णन मिलता है।

4) प्राणायाम :- योग की यथेष्ट भूमिका के लिए नाड़ी शोधन और उनके जागरण के लिए किया जाने वाला श्वास और प्रश्वास का नियमन प्राणायाम, मन की चंचलता और विक्षुब्धता पर विजय प्राप्त करने में सहायक है।

5) प्रत्याहार :- इंद्रियों को विषयों से हटाने का नाम ही प्रत्याहार है। इंद्रियाँ मनुष्य को बाह्यभिमुख किया करती हैं। प्रत्याहार के इस अभ्यास से साधक योग के लिए परम आवश्यक अन्तर्मुखिता की स्थिति प्राप्त करता है।

6) धारणा :- चित्त को एक स्थान विशेष पर केन्द्रित करना ही धारणा है।

7) ध्यान :- जब ध्येय वस्तु का चिंतन करते हुए चित्त तद्रूप हो जाता है तो उसे ध्यान कहते हैं। पूर्ण ध्यान की स्थिति में किसी अन्य वस्तु का ज्ञान अथवा उसकी स्मृति चित्त में प्रविष्ट नहीं होती।

8) समाधि :- यह चित्त की वह अवस्था है जिसमें चित्त ध्येय वसतु के चिंतन में पूरी तरह लीन हो जाता है। योग दर्शन समाधि के द्वारा ही मोक्ष प्राप्ति को संभव मानता है।

5. पूर्व मीमांशा - महर्षि जैमिनी द्वारा रचित एवं प्रदत्त पूर्वमीमांसा, कर्म-काण्ड पर जोर देती है। जहाँ वेदान्त (उत्तर मीमांसा), ज्ञान-काण्ड पर बल देता है वहीं पूर्ण मीमांसा में ज्ञान प्राप्त हेतु प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि एवं शब्दों के तर्को एवं वैदिक कर्मकाण्डों को आधार बताया गया। पूर्व मीमांसा में संहिता एवं ब्राह्मण ग्रन्थों पर (जो कि 'वेद' की ऋचाओं को सार्वभौमिक सत्य मानते थे) विशेष जोर दिया गया धर्म एवं जीवन जीने की कला विकसित की गयी। "वैश्वानर" "ब्राह्मण" इत्यादि ही नाम सर्वोच्च सत्ता को दिये गये। 'ब्राह्मण' ग्रन्थ वर्तमान में मुख्यतः छह उपलब्ध है।

1. ऐतरेय ब्राह्मण - ऋग्वेद
2. सांख्यायन ब्राह्मण - ऋग्वेद
3. कौशीतकी ब्राह्मण - ऋग्वेद
4. शतपथ ब्राह्मण - यर्जुवेद
5. महाताड्य ब्राह्मण - सामवेद
6. गोपथ ब्राह्मण - अथर्ववेद

वैदिक कर्मकाण्ड के केन्द्र बिन्दु में "संस्कार" एवं "यज्ञ" से सम्बन्धित सूत्र इन 'ब्राह्मण' ग्रन्थों में दिये गये। 16 संस्कारों में नामकरण, पुंसवन, अन्नप्रासन एवं अग्नि पाणिग्रहण आदि प्रमुख थे। तत्पश्चात् इन सभी ब्राह्मण ग्रन्थों का निचोड़ 'आरण्यक' ग्रन्थों में लिखा गया– जैसे– तैत्तरेय आरण्यक आदि।

वस्तुत: यह सभी ग्रन्थ, जीवन शैली का परिचायक थे न कि आत्मोपलब्धि के। इन सभी ग्रन्थों से जीवन के पहले आयाम अर्थात् शरीर शुद्धि, विचार शुद्धि एवं भाव शुद्धि पर जोर दिया गया।

उत्तर मीमांशा – उत्तर मीमांशा या आधुनिक वेदान्त के रचयिता 'वादरायण' या महर्षि व्यास थे। 'ब्रह्म सूत्र' की रचना करके त्रिगुणातीत ब्रह्म सत्ता के साक्षात्कार को ही जीवन का परम ध्येय बताया गया है। वैदान्तिक ग्रन्थों के इस प्रकार 03 प्रमुख स्रोत माने गये हैं।

– उपनिषद

– ब्रह्मसूत्र

– भगवद्गीता

श्री आदि शंकराचार्य, रामानुजम, निम्बार्काचार्य एवं माधवाचार्य ने तत्पश्चात् उपरोक्त तीन ग्रन्थों को ध्यान में रखते हुये अपने अपने भाष्य लिखे। पाठकों की सुगमता के लिये इन सबका संक्षेप में अन्तर इस प्रकार है।

वैदान्तिक शाखा	प्रवर्तक	ग्रन्थ मुख्य विचार
अद्वैत वेदान्त	शंकराचार्य	1. यह सम्पूर्ण जगत 'एक इकाई' है। जीव, बृह्म और माया सब एक हैं। जीवात्मा एवं ब्राह्मण (सर्वोच्च सत्ता) एक ही हैं। अज्ञान से ही माया की उत्पत्ति होती है और यही दु:ख का कारण है। जिस क्षण यह ज्ञान हो जाता है, कि "कोई दूसरा नहीं है" – उसी क्षण मुक्ति प्राप्त हो जाती है।
द्वैत वेदान्त	माधवाचार्य	1. बृह्म एवं सृष्टि पृथक हैं। जीवात्मायें भी पृथक–2 हैं। इसी प्रकार पदार्थ भी पृथक–2 हैं। जीवात्मा, परमात्मा का प्रतिबिम्ब तो है पर उसके समरूप नहीं है। मोक्ष की प्राप्ति इस ज्ञान से मिलती है कि यह सम्पूर्ण जगत एवं पदार्थ उसी सर्वोच्च सत्ता के अधीन होकर अपना कार्य करते हैं।
द्वैताद्वैत	निम्बार्क	ब्रह्म, आत्मा एवं पदार्थ ये तीन इकाइयाँ सृष्टि की हैं। आत्मा एवं पदार्थ का अपना अस्तित्व है, परन्तु वह ब्रह्म के ऊपर आश्रित है। बृह्म गुण एवं दोष से परे है। ब्रह्म नियंत्रक है, आत्मा भोगी है एवं पदार्थ भोग्य है। राधा–कृष्ण के शरणागत भाव से परमपद संभव है।
विशिष्टाद्वैत	रामानुज	अद्वैत वेदान्त के विपरीत, इस मत में ब्रह्म को भगवान विष्णु बताया गया है। श्री भगवान विष्णु एवं श्री लक्ष्मी साथ मिलकर परमसत्ता हैं। आत्मा एवं पदार्थ भी इसी परमसत्ता के हिस्से मात्र हैं। परबृह्म, आत्मा एवं सृष्टि एक इकाई हैं। पदार्थ एवं आत्मा में गुण–दोष हैं। ईश्वर ही पारब्रह्म है। जीव, चित् बृह्म (चेतना सहित) एवं जगत (अचित बृह्म)

है। यदि तत्वमसि का अर्थ "मैं वही बृाह्मन हूँ" लिया जायेगा तो "सर्वम खल्व इद्म ब्रह्म" का अर्थ, अनर्थ हो जायेगा। इस प्रकार इस मत में ईश्वर, जीव एवं जगत को मिलाकर बृाह्मन (परमबृह्म या परमसत्ता) माना गया है, जहाँ ईश्वर गुणाधीश है।

अब इन सारे सिद्धान्तों को सरल रूप में समझ लें।

अ) अद्वैत (मायावाद)

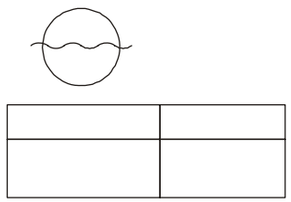

- मैं 'वह' हूँ - यही परम ज्ञान है।
- जगत भ्रम है माया है।
- नित्य-अनित्य वस्तु विवेक को जीवन में उतारन होगा।
- एक ही आत्मा, अनेक रूपों में भास रही है। अनेकता में एकता अनुभव ही ज्ञान है।
- 'ज्ञान योग' से आत्मसाक्षात्कार (कैवल्य पद की प्राप्ति) एवं निर्विकल्प समाधि सम्भव है।
- मैं यह शरीर नहीं हूँ, न मैं मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार हूँ-''अहं ब्रह्मास्मि।''
- निर्गुण परब्रह्म की परिकल्पना जो समस्त रचनाओं के मूल में है और समस्त रचनाओं से परे है- वह बृह्म इस संसार का अकर्ता कर्ता है।
- जीवात्मा-'सत्-चित्-आनन्दमय' है जो कि माया के प्रभाव से अपने रूप को भूल गयी है।
- चार महावाक्यों पर झुकाव

  सरल अर्थ- मैं ही वह ईश्वर/बृह्म/परमात्मा हूँ।

ब) द्वैत (तत्ववाद)

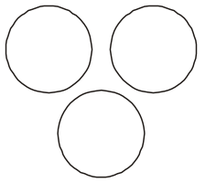

- परमात्मा, जीवात्मा से भिन्न है।
- जीव एवं जगत दोनों ही सत्य हैं।
- सारी जीवात्मायें अलग-अलग है।
- कर्म के सिद्धान्त से जीवात्मा का विकास/पतन होता है।
- मुक्ति के बाद भी अन्य लोकों में कर्म सिद्धान्त जारी रहेगा।
- 'कर्म योग' एवं 'भक्ति योग' से आत्म साक्षात्कार।
- व्यक्तिगत ईश्वर की परिकल्पना का सिद्धान्त है जो कि सत्-चित् आनन्दमय है।
- 'वैराग्य' एवं 'भक्ति' ही मोक्ष को दिलायेगी। सविकल्प समाधि सम्भव है।

  सरल अर्थ- मेरे अतिरिक्त ईश्वर भी है और उसे उपासना से प्रसन्न किया जा सकता है।

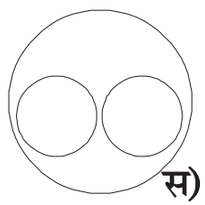

स) विशिष्टाद्वैत

- जीव व प्रकृति (जड़) उसी मूल ब्राह्मन के

  अंश हैं। परन्तु जीवात्मा ईश्वर या परमसत्ता नहीं है।
- यहाँ एकात्मकता एवं द्वैत दोनों हैं।
- मैं आत्मा हूँ जिसका अस्तित्व परमात्मा (विष्णु) पर निर्भर है।
- सगुण ब्रह्म की उपासना से ही मोक्ष की प्राप्ति होगी।
- जगत भी सत्य है।

– मोक्ष के बाद, जीवात्मा परमात्मा में मिल जायेगी। परिपूर्ण समाधि सम्भव है।

सरल अर्थ – उपासना एवं भक्ति भाव से एक दिन मैं 'वह' हो जाऊँगा।

ऊपर ये देखने में भले ही तीनों में अन्तर हो, परन्तु साधना पर क्रमशः चलते-चलते तीनो ही एक लक्ष्य पर पहुँचते हैं और वो है- 'आत्मसाक्षात्कार'। एक बेदान्ती की दृष्टि से प्रकृति के स्वरूप, पंचमहाभूतों, पंचतन्मात्राओं एवं जीवात्मा के आपसी सम्बन्धों को निम्न चित्र के द्वारा सरलता से समझा जा सकता है।

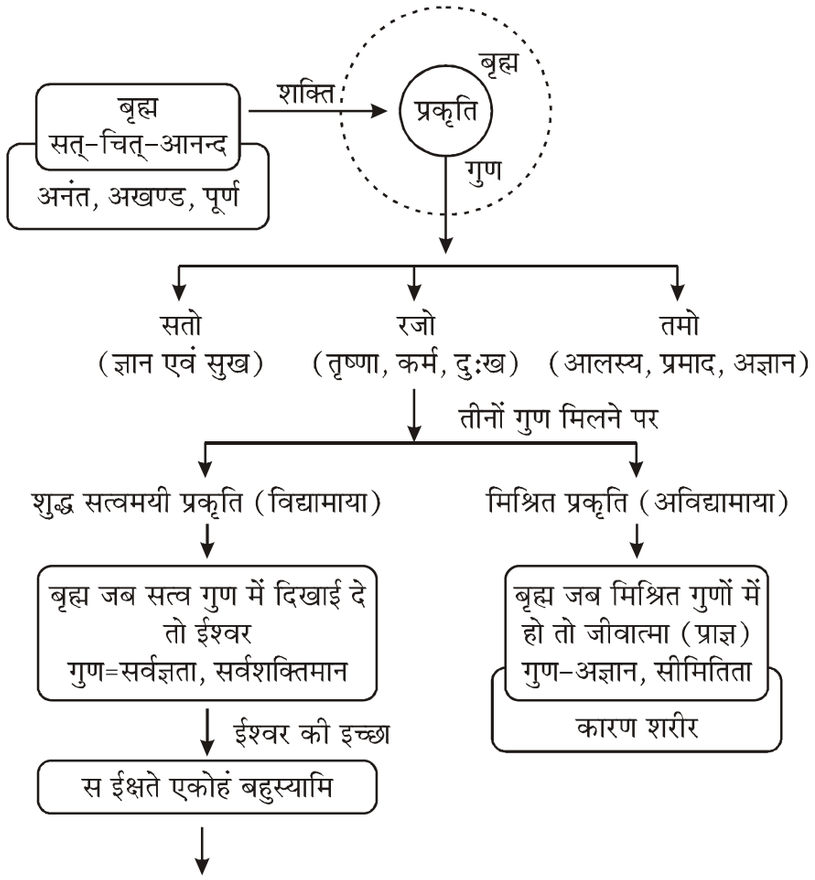

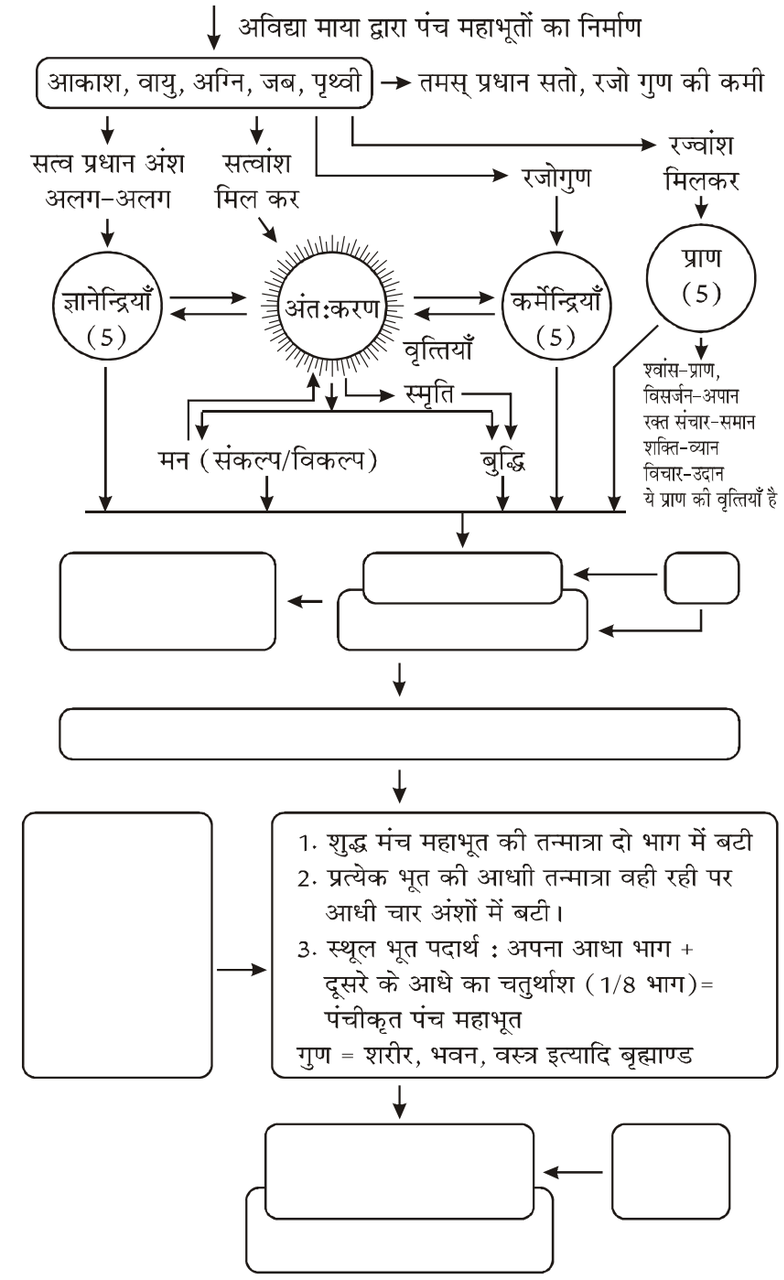

इस प्रकार जीव अपने कारण एवं सूक्ष्म शरीर के साथ स्थूल शरीर में रहता है। इन्द्रियाँ के वर्हिदृष्टि में होने के कारण ध्यान आत्मस्वरूप की ओर नहीं जाता है। शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श से सूक्ष्म तन्मात्रायें इन्द्रियों द्वारा ग्रहण होती है। अनुकूल/प्रतिकूल होने पर मन में सुख/दु:ख का जन्म होता है। बुद्धि, स्मृति से इन विषयों के अच्छा/बुरा का भान कराती है। इस प्रकार निम्नलिखित चित्र के द्वारा तीनों शरीरों का अन्तर बताया जा सकता है।

शरीर	कोष	गुण	जीवात्मा का नाम
स्थूल शरीर	अन्नमय कोष	कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों के अंग इस कोश में है।	वैश्वानर
सूक्ष्म शरीर	प्राणमय कोष मनोमय कोष	प्राण + अंत:करण (मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार)	हिरण्यगर्भ
कारण शरीर	आनन्दमय कोष	अत्यंत सूक्ष्म आत्मस्वरूप का भान	ईश्वर

अब निम्न बिंदुओं का मनन करें –

- वेदान्त का ज्ञान एक समुद्र है, और बेहद सूक्ष्म भी है। केवल यही विचार दृढ़ कर लेने से, 'कि मैं शरीर नहीं हूँ' पहला कदम रख सकेंगे।
- सारे वैदान्तिक विचार, एक–दूसरे के पूरक है, विरोध में नहीं। ध्यान रखें कि, त्रिगुणात्मक प्रकृति के अलग–अलग अनुपात में मिलने से ही ब्रह्माण्ड एवं इन स्थूल शरीरों की रचना हुई। अतएव प्रत्येक व्यक्ति/जीवात्मा के लिए भिन्न–भिन्न मत/मतांतर/क्रिया/उपासना/भक्ति/ज्ञान के रास्ते रहेंगे। जो, जिसे प्रिय लग जाये, उसी रास्ते आगे बढ़ जाये। कोई भी मार्ग हेय नहीं है। जिसे रामानुज परिवर्तनशील कहते हैं, आचार्य शंकराचार्य उसे माया कहते हैं।
- जिस प्रकार एक मंदिर के बाहर खम्भों में एक मूर्ति लगी हो, और ऐसा चित्र हो कि वह मंदिर को अपने ऊपर उठाये हो तो वही हाल जीवात्मा का है– अज्ञान एवं माया के वशीभूत होकर हम जगत में कर्ताभाव का बोध रखते हैं। ज्ञान होते ही यह दु:ख दूर हो जाता है। अभ्यास एवं वैराग्य (निर्लिप्तिता, सन्यासी होना नही) इस ज्ञान को दृढ़ करते हैं।
- जीसस क्राइस्ट Son of God कब बने? जब स्थूल शरीर के तादात्मय रूपी भाव को सूली पर चढ़ा दिया गया। फिर जो बचा वही परमसत्ता है।, सत्–चित्–आनन्दमयी है। भाग्य (Fate) एवं कर्म की स्वतंत्रता (Free will) का अन्तर भी इसी से स्पष्ट है। यह प्रश्न अहंकार जनित है। एक बार अपने स्वरूप का आभास होते ही, यह प्रश्न अपना आधार खो देता है और तब Freewill ही Fate है और Fate, freewill है।
- स्वनावस्था में सांसारिक चिनतायें तिरोहित हो जाती है। इसका तात्पर्य है, कि हम चिन्ताओं को पकड़े हैं। यह संसार स्वप्न मात्र है यह ज्ञान होते ही, अपनी मूल प्रकृति के साथ सदैव रहने की आदत को धीरे–धीरे विकसित करना है।
- मन, विचारों का प्रवाह है। मन अंत:करण में पंचभूतों के सत्वांश से बना है। मन सूक्ष्म शरीर का हिस्सा है। जीवात्मा कारण शरीर की प्रधान है और अंग स्थूल शरीर में हैं। प्रश्न उठता है कि एक विचार "मन को काबू में करना है" बाकी सारे विचारों को कैसे रोकेगा? मन को मन से काबू कैसे करोगे? इसीलिये "चित्तवृत्ति निरोध" एवं सतत अभ्यास कि "मैं शरीर नहीं हूँ" की दृढ़ता आने पर, ध्यान स्वत: लगने लगेगा। वासनायें कम होने पर वैराग्य की अनुभूति होगी। वैराग्य इस ध्यान में उत्प्रेरक का कार्य करता है। पर याद रहे– कि वह (ब्रह्म) ध्यानातीत भी है। अतएव साधना पर चलते रहें। प्रथम कदम में योग, विचार कम करने का माध्यम

है और जिस दिन सारे विचार समाप्त हो गये अर्थात् दो विचारें के बीच का अन्तर अनन्त हो गया उसी समय आत्मोपलब्धि हो जायेगी। जिस प्रकार हमें बार-बार यह दोहराने की आवश्यकता नहीं होती कि हम मनुष्य हैं, उसी प्रकार एक बार उस क्षण की अनुभूति मात्र से ही फिर योग की भी आवश्यकता समाप्त हो जाती है। इसीलिये बार-बार कहा गया है कि- क्रिया एवं कर्म मार्ग हैं-लक्ष्य नहीं।

- ''एकोऽहं बहुष्यामि''- से तार्किक रूप से यह सिद्ध किया जा सकता है कि सबके अनुभव भिन्न-2 होंगें, वरना प्रकृति एवं ब्रह्माण्ड रचना की आवश्यकता ही नहीं थी। अतएव तुम्हें अपनी खोज स्वयं करनी होगी। मेरे अनुभव, रास्ते, क्रिया एवं कर्म तुम्हारे काम नहीं आयेगे। "किन्हीं भी दो जीवात्माओं का आत्मनिरीक्षण की दिशा में बढ़ाया कदम भिन्न-2 परिणाम एवं अनुभूति देगा।

  इस पुस्तक में भी जो विधि बतायी गयी हैं, वह मात्र इस पथ का 'ककहरा ज्ञान' है। यह जीवात्मा के सतोगुण के अंश पर निर्भर करेगा कि उसे उसी क्षण ज्ञान हो गया या कुछ समय लगा।

- जैसे अगर मुझे दिल्ली जाना हैं तो मुझे दूरी तय करनी होगी। पर इस आन्तरिक यात्रा में दूरी केवल अज्ञान के कारण मानी हुई है। परमात्मा से यह हमारी मानी हुयी दूरी है। अतएव जाना कहीं नहीं है। किसी भी व्यक्ति को उसके अपने घर के अन्दर का रास्ता पूंछने की आवश्यकता ही नहीं है। बस मन की वृत्तियों पर निग्रह करने की दिशा में अग्रसर होना है।

- एकमात्र रहस्य यही है- कि वह दृष्टा भी नहीं है- दृष्टा भी मन का उत्तर है। वह अकर्ता कर्ता है।

- क्या मैं उससे प्रेम करूँ? तो वह तो प्रेम का दृष्टा है-नहीं वह स्वयं प्रेम है।

- "मैं कौन हूँ" के जवाब में जो उत्तर मिले वह मायाजन्य है। वह ध्यानातीत, शब्दातीत, परमब्रह्म प्रेमस्परूप ही है।

  और अन्त में- यह सारे प्रश्न कौन पूँछ रहा है? अज्ञानता में पूँछें प्रश्नों का कोई आधार नहीं होता। जब सारे प्रश्न समाप्त हो जायेंगे वहीं से आन्तरिक यात्रा शुरू होगी। एक बार यह बोध हो गया कि प्रश्न भी मायिक हैं फिर पूँछने की आवश्यकता समाप्त हो गयी। अतएव अपनी यात्रा (स्थूल शरीर से परमसत्ता तक) की शुरूआत जितनी शीघ्रातिशीघ्र कर दें उतनी ही जल्दी आन्तरिक सुख की वर्षा होगी और यह इसी क्षण संभव है।

स) गुह्य ज्ञान की प्राप्ति

भगवद्गीता में भगवान कृष्ण केवल 3 जगह यह कहते हैं- कि यह ज्ञान बेहद गूढ़ है। अध्याय 9, 15 और 18 में 'गुह्यतमम्' शब्द आता है।

1. इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।

   ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात।। (9/1)

2. इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानध।

   एतद बुदध्या बुद्धिमान स्यात्कृततकुत्यश्च भारत। (15/20)

3. इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद गुह्यतरं मया।

   विमृश्तैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरू।। (18/63)

   अब इसे एक एक-एक करके समझें-

प्रथम श्लोक - अध्याय 9 के चौथे श्लोक में कहा है कि- "सारा जगत मुझमें है, परन्तु मैं उसमें स्थित नहीं हूँ" और अगले ही श्लोक में कहा है कि- "अब मेरा चमत्कार देखो कि मुझमें कुछ भी स्थित नहीं हैं"। दो विरोधाभाषी श्लोक और दोनों एक दूसरे के आगे-पीछे कैसे समझा जाये। इसे समझने के

लिये 'रस्सी और सर्प' का उदाहरण लें। "रस्सी सर्प की भाँति दिखती है, पर जब ज्ञान की टार्च लाये तो रस्सी ही थी।"

1. सर्प कहाँ प्रतीत हुआ – रस्सी में

   जगत कहाँ प्रतीत हुआ – मुझमें

2. क्या सर्प रस्सी में था – नहीं

   क्या जगत मुझमें था – नहीं

यह चराचर ब्रह्माण्ड उसमें होकर भी नहीं है। यह जगत नित्य नहीं है। अतएव चारो ओर केवल वही है। वेदान्त का यही सूत्र है– कि जो दिखाई दे रहा है वह परिवर्तनशील है, नष्ट हो जायेगा। यही गुह्य ज्ञान है। यही जो जीवन में उतार ले गया वो आत्मा ज्ञानी है।

दूसरा श्लोक – जब चारों ओर ईश्वर ही ईश्वर है तो फिर सारे अच्छे, बुरे कर्मो को भी वही करा रहा है। मेरा क्या दोष है? ऐसा मूर्खतापूर्ण प्रश्न कई लोग करते रहते हैं? इसीलिये पन्द्रहवें अध्याय में यह गुह्यतर ज्ञान दिया गया है जिसमें प्रकृति और पुरुष को समझाया गया है।

- प्रकृति, पुरुष की शक्ति है। यह 'परा' और –अपरा' होती है। यही प्रकृति सारे कार्यो के मूल में है। इसे ऐसे समझें– कि पुरुष एक कपड़ है और प्रकृति उसकी पेंटिंग है। एक पर्दे पर फिल्म चल रही है। पर्दा फिल्म के मूल में है उसे साधे है, संभाले है पर पर्दा, फिल्म से विरक्त है। यहाँ पर्दा, पुरुष एवं फिल्म प्रकृति है। इस प्रकार 'मन' 'बुद्धि' एवं 'चित्त' प्रकृति के साथ हैं और सर्वव्यापी आत्मा ही पुरुष है।

- श्री विद्यारण्य जी का घड़े का उदाहरण देखो। घड़े के अन्दर घटाकाश है और बाहर आकाश (महाकाश) है। अब घड़े में पानी भर दो, तो घटाकाश दिखाई देना बन्द हो गया और अब इसमें महाकाश का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। यह जलाकाश हो गया। इसी प्रतिबिम्ब में सारा जगत दिखाई दे रहा है। यही वो मायारूपी संसार है, जो हमें दिखाई दे रहा है। यह जलाकाश, जीवात्मा है। घट–शरीर है। जीवात्मा समझ रही है, कि वह महाकाश से भिन्न है। यही सारे दु:खों का कारण है। यह जल ही मन, बुद्धि या चित्त (अंत:करण) है। हमारे मन में जो प्रतिबिम्ब बन रहे हैं, उसे हम संसार मान रहे हैं।

तो फिर कर्ता कौन है? जब जीवात्मा, शरीर से तादात्मय मान लेती है (क्योंकि जल के प्रतिबिम्बों को सत्य मानने से वासनायें मजबूत होती हैं, अहंकार की पुष्टि होती है), तब यही प्रकृति, जिसका यह सारा खेल है (रजो–सतो–तमो गुणों की न्यूनाधिक मात्रा के अनुसार) कर्ता है। जो यह समझ गया कि वह परमात्मा ही इस जगत का अकर्ता कर्ता है, वो ही आत्मज्ञानी है।

तीसरा श्लोक – यह सब इतना कठिन प्रतीत होता है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार फिर उसके ऊपर प्रकृति और उसके सतो–रजो–तमो गुण, तो इस जड़ शरीर से क्या कभी चेतना को प्राप्त या महसूस किया भी जा सकता है या नहीं? यही गुह्य ज्ञान इस अंतिम अध्याय में दिया गया है। इसके ठीक पूर्व के श्लोक में भगवान कृष्ण कहते हैं– "कि केवल पूर्ण रूप से शरणागत भाव ही इस भवसागर से मुक्ति/मोक्ष का एकमात्र रास्ता है। जब सारे सांसारिक भावों को त्यागकर केवल उसी का ध्यान किया जाय, तभी परमगति को प्राप्त किया जा सकता है। यही सबसे बड़ा ज्ञान है। इसी अध्याय के श्लोक 66 में सम्पूर्ण गीता का निचोड़ मौजूद है– "मामेकं शरणं ब्रज"। तो अगर केवल ज्ञान से कोशिश की जाये तो ब्रह्म की खोज है। अगर योग से की जाये तो परमात्मा की खोज है। और यहाँ यह अद्‌भुत ज्ञान दिया गया, कि भक्तिभाव (इसी का चरमरूप शरणागति है) से खोज की जाय, तो यही ईश्वर की खोज है। जो "रसो वै स:" है, और माधुर्य एवं एश्वर्य का अनन्त रूप है। अतएव वह 'प्रेम'

एवं 'श्रद्धा' का ही प्रतिफल है। बल्कि कहें- कि वह ही 'प्रेम' है। जीवात्मा को, परमात्मा को उपलब्ध करने वाली सीढ़ी प्रेम एवं शरणागति की है और उसमें श्रद्धा के डन्डे लगे होते हैं। इस प्रकार ब्रह्म-सत की अनुभूति है, परमात्मा (सत-चित्) की अनुभूति है एवं ईश्वर सत, चित आनन्द की अनुभूति है।

अतएव यह ज्ञान मिलता है कि-

- ब्रह्म, परमात्मा एवं ईश्वर एक हैं और गुण अलग-अलग भी। ब्रह्म अव्यक्त है, परमात्मा सगुण व्यक्त एवं शक्तिमान है, ईश्वर-सगुण, व्यक्त शक्तिमान एवं माधुर्य तथा प्रेम स्वरूप है। वेदान्ती (ज्ञानी) ब्रह्म को योगी-परमात्मा को एवं भक्त, ईश्वर को खोजता है।
- हम सब, उसमें हैं और वह हममें नहीं है। और फिर हम सब भी उसमें नहीं है। यह जगत अनित्य है।
- यह सतो, रजो एवं तमोगुणी प्रकृति ही कर्ता और भोक्ता है। जीवात्मा को शरीर के तादात्म्य के कारण, कर्ता और भोक्ता होने का भ्रम है। जब घटाकाश में भरा मन रूपी जल, वाष्पीकृत हो जाता है, तो जलाकाश बनने वाले बिम्ब समाप्त हो जाते हैं और एकरूपता दिखाई देने लगती है।
- उपरोक्त सारे ज्ञान को समझने के बाद केवल शरणागत भाव ही वह विकल्प है, जिससे ज्ञान, भक्ति एवं योग की त्रिवेणी में स्नान करने का सौभाग्य प्राप्त करते हुये बृह्मानन्द पाया जा सकता है।

यही उपरोक्त 03 श्लोकों में दिया गुह्यज्ञान है। जो यह समझ गया वही आत्मज्ञानी है।

अध्याय - 4 ➤➤➤

चक्र ज्ञान

चक्र	बीज मंत्र	देवता	वायु	लोक	वृत्ति	लाभ
मूलाधार	लम	गणेश	अपान	भू	सांसारिक सुख, लालच, अहंकार	मानसिक नियंत्रण
स्वाधिष्ठान	वम	दुर्गा	अपान	भुवा	शन्सय, क्रोध, इच्छायें	सांसारिक लाभ
मणिपुर	रां	सूर्य	समान	स्वाः	घ्रणा, अनिद्रा, शर्म, डर, दुख, शक्ति	उत्तम स्वास्थ्य
अनहत	यम	विष्णु	प्राण	महा	अहंकार, प्रयास	भावनाओं, राग एवं द्वेष पर नियंत्रण
विशुध	शम	शिव	उदान	जना	ज्ञान, गर्व, क्षमा, सुख, शांति	आंतरिक सुख
आजा	हम, छम	जीवात्मा	प्राण	तपा	प्रेम	पूर्णानंद
सहस्त्रार	ओम	परमात्मा	व्यान	सत्य	पूर्णज्ञान	मुक्ति

ग्रन्थियों, बन्ध एवं चक्र में सम्बन्ध -

इस काया के भीतर सात समुद्र हैं और नौ सौ नदियाँ भी इसी में बहती हैं। दशों-दिशायें भी इस काया के भीतर हैं और इसी में सब देवों और पितृों का वास स्थान है। यह काया सृष्टि का विराट स्वरूप है।

सात चक्र आपके शरीर में हैं, आठवाँ ऊपर है। पहला - मूल दल कमल या सिद्धलोक गुदा-स्थान पर जो मूलाधार चक्र कहलाता है। दूसरा - 'स्वाधिष्ठान

चक्र' शिश्न इन्द्री पर ब्रह्मलोक कहलाता है। तीसरा – 'मणिपुरक चक्र' जो नाभि स्थान है विष्णु लोक कहलाता है। चौथा – 'हृदय चक्र' जो शिव–पार्वती लोक कहलाता है। पाँचवाँ – 'विशुद्ध चक्र' कंठ स्थान पर शक्ति लोक कहलाता है। छठवाँ – 'आज्ञाचक्र' नेत्रों के मध्य स्थान पर है जो 'आत्मलोक' कहलाता है। सातवाँ – 'सहस्त्रसार चक्र' जो भृकुटि के ऊपर चैतन्य ब्रह्म का वास है।

कहे कबीर जानेगा सोई। जापर कृपा सत्गुरु की होई।।

चक्र ज्ञान क्यों आवश्यक है? यह स्थूल शरीर में कहाँ–2 हैं?

अ) चक्र, ऊर्जा केन्द्र हैं। यह स्थूल शरीर का हिस्सा हैं ही नहीं। सातों चक्र सूक्ष्म शरीर का अभिन्न अंग है। यह सूक्ष्म शरीर, स्थूल से हिता नाड़ी से जुड़ा होता है– ऐसा औषनिषदक प्रमाण है। चूँकि चक्र सूक्ष्म जगत की चीज है इसे स्थूल जगत में ढूँढ़ना विडम्बना है। जब ध्यान एवं धारणा द्वारा सारी कर्मेन्द्रियों एवं ज्ञानान्द्रियों के साथ–2 मन, बुद्धि और अहंकार का बहाव वाह्य न हाकर आन्तरिक हो जाये और यह चेतना ऊर्ध्वगामी हो जाये तो चक्र भेदन से कुन्डलिनी जागरण होता है।

ब) जब यही चेतना, स्थूल शरीर में बाहर की ओर बहती है, तो सारे सांसारिक कार्य (जो इस शरीर से संभव है) सम्पन्न होते हैं।

स) 'इडा' एवं 'पिंगला' स्थूल शरीर की, सुसुम्ना, बज्र एवं चित्रा, सूक्ष्म शरीर की एवं ब्रह्मनाड़ी कारण शरीर के नाडी तंत्रों का हिस्सा हैं। जब कोई योगाभ्याास के द्वारा इस अधोगामी एवं बाहर निकलती ऊर्जा को उर्ध्वगामी एवं अन्दर मोड़ लें, तो यह ऊर्जा सुसुम्ना में बहना शुरू होगी और वहाँ के चक्रों के भेदन से आध्यात्मिक उन्नति शुरू होगी।

द) यह क्रिया आसान कदापि नहीं है। अतएव आत्मचिन्तन के इस मार्ग पर चलते हुए यह सतत स्मरण आवश्यक है कि "हम यह शरीर नहीं है।" हम इस शरीर से अन्य कुछ हैं– अतएव 'चक्र साधना' भी हमारे साधना पथ का एक मुख्य अंग है। यह ध्यान करना कि "सात विभिन्न स्थानों पर ऊर्जा ऊपर की ओर बह रही है, एवं जिस शरीर में वह बह रही है वह मेरा सूक्ष्म शरीर है और सूक्ष्म शरीर वज्र एवं चित्रा नाडी से कारण शरीर से जुड़ा है और यही ऊर्जा कारण शरीर को ब्रह्म नाडी के द्वारा एक अनन्त ऊर्जा स्रोत से मिला रही है। वही ज्योतिपुंज परमब्रह्म है। इस प्रकार का चक्र ध्यान करने से "मैं यह शरीर नहीं हूँ" की धारणा मजबूत होती है। यहाँ यह भी स्पष्ट कर दूँ कि यह पूर्ण भ्रांति है कि चक्रभेदन होने से हानि हो सकती हैं। अरे आध्यात्मिक पथ ही एकमात्र ऐसा पथ है जिस पर तुम अगर नि:स्वार्थ एक पग रखते हो तो फासला दो पग का कम होता है क्योंकि परमपिता परमेश्वर भी तुम्हारी ओर एक पग बढ़ाते हैं। ऊपर लिखि क्रिया अगर कोई ध्यान में उतार लें तो क्यों कर लाभ नहीं होगा?

य) ऊपर दिये गये चार्ट में अपनी मनोवृत्ति देखें और समझें कि ऊर्जा विखंडित होकर पड़ी है। इसे संगठित करने हेतु आकाक्षांओं और सांसारिक वासनाओं को समाप्त करके वैराग्य से दृढ़ करना होगा। इस दौरान कर्म समाप्त नहीं कर देना है। बल्कि "कर्म सन्यास" में उतरना है। कर्म करते रहें पर फल दूसरों को बाँट दें–यही कर्म सन्यास है।

द) साधना पथ की शुरूआत में अपने प्रत्येक चक्र का ध्यान करते हुये, उस पर चार्ट में दिये बीजमंत्र को होंठ बन्द करके मानसिक उच्चारण से भी अत्यंत लाभ होता है।

उपरोक्त वर्णन का शास्त्रोक्त प्रमाण है। भगवद्गीता के आठवें अध्याय के 24वें श्लोक में भगवान कृष्ण कहते हैं कि योगी को मुक्ति के लिए इसी रास्ते पर चलना होगा वहाँ चारों ओर अग्नि होगी एवं कोटि–कोटि सूर्यो के समान प्रकाश होगा।

इस प्रकार चक्र साधना से भी सारे ब्रह्माण्ड से एकत्व करके "मैं वही हूँ" का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यहाँ एकत्व से तात्पर्य है कि यह स्थूल शरीर, हमारे सूक्ष्म शरीर का एवं सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर का प्राकट्य मात्र है। और यही चेतना का खेल है।

ध्यान के दौरान हुये अनुभव हमेशा अहंकार को बढ़ावा देते हैं। अतएव उन अनुभवों को केवल रास्ता माने। इन अनुभवों के भी पार, उससे (अनुभव से) मुक्त होकर उस भावातीत एवं अनुभवातीत की सत्ता है।

याद रखना है कि जहाँ ऊर्जा है वहीं चेतना है और जहाँ चेतना है, वहीं ऊर्जा है। इस प्रकार हम धारणा और ध्यान के द्वारा अपनी चेतना को एक जगह पर केन्द्रित करके ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी कर सकते हैं।

"ध्यान में समय नहीं, ध्यान में तीव्रता महत्वपूर्ण है।"

अध्याय - 5 >>>

क्रिया एवं अक्रिया ज्ञान

(क्रिया मार्ग है, लक्ष्य नहीं एवं अक्रिया भी एक क्रिया है)

आध्यात्मिक उद्देश्य की प्राप्ति के हेतु चार सूत्रीय मार्ग इस प्रकार हैं-

अ) मन की स्वच्छता - निर्मल मन

ब) यौगिक क्रियायें - मन का ठहराव

स) वर्तमान में ठहराव - अद्वैत भाव

द) भक्ति का उदय - निस्वार्थ प्रेम

अ) निर्मल मन

मन की स्वच्छता : निर्मल मन की प्राप्ति

यह पहला पड़ाव है- सत्संग, आत्मतत्व की प्रबल जिज्ञासा, सेवा भाव, दान एवं सतकर्म इसकी नींव में है। इस नींव के ऊपर एक बगीचे का निर्माण करना है, यह बगीचा आपका मन है। अब क्या इसमें कैक्टस भी लगाने है या सिर्फ गुलाब ही रखने हैं- यह चयन आपके पास प्रकृति प्रदत्त है। अगर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, घृणा, अपराधबोध, पश्चाताप, क्रोध, काम, वासनाओं के पौधे लगे हैं तो यही मन रेगिस्तान की तपती भूमि है- और प्रेम रूपी गुलाब लगे हैं- तो यही उत्तराखण्ड स्थित फूलों की घाटी है। चयन आपको करना है कि हमारे बगीचे में कोई दूसरा काँटे न फेंक जाये। अतएव सदैव अपने से गुणवान एवं सत्संगी व्यक्ति का साथ लें। याद रखें- जो प्रभु की ओर ले जाय-वही सच्चा साथी है-बाकी व्यवहार जगत है।

मन की दुर्बलता एवं विचलन के कुछ कारण हैं- क्या कारण है?

अ) अगर मुझे, अपेक्षित परिणाम मिलेंगे, तो ही सुख होगा। अब चूँकि परमात्मा अकर्ता कर्ता है एवं प्रकृति को किसी परिणाम की आवश्यकता नहीं है, अतएव ऐक्षिक परिणाम की चाह में हम पथ विमुख हो जाते है और यही दुख का पहला कारण है कि किसी अपेक्षित परिणाम की आवश्यकता है।

ब) दूसरा कारण अपने को ईश्वर से पृथक मानना है। अगर यह जान जायें और मान लें कि अनुभव करने वाला एवं अनुभव कराने वाला पृथक नहीं है, तो कोई द्वन्द्व नहीं है। परन्तु कर्ताभाव इतना बढ़ चुका है कि हमें लगता है, कि जब तक अमुक कार्य मेरे द्वारा सम्पन्न नहीं होगा-ईश्वर प्रसन्न नहीं होगा और मेरे अपेक्षित परिणाम नहीं मिलेगें।

स) याद यह रखना था, कि "परमात्मा" को कुछ भी नहीं चाहिये और हम उसी का अंश है। परन्तु अलग एवं पृथक मानते ही दुखों के ज्वालामुखी में हम अपने मन को स्वयं ही धकेल रहे हैं।

द) एक बार यह द्वार (कर्ता भाव का) खुलते ही-हम मान लेते हैं कि संसार में हमारे लिये अमुक चीज नहीं है या अमुक चीज की कमी है। और यहीं से हम अपने बगीचे में ईर्ष्या एवं द्वेष की अमरबेल लगा लेते है।

य) अतएव जब तक देह के साथ जुड़ाव है- कर्त्ताभाव है - मन स्वच्छ नहीं होगा "सोहम्" महामन्त्र का ध्यान रखें। अर्थात् "मैं वही हूँ"। इसी संदर्भ में महावाक्य भी बताये गये हैं- वह इस प्रकार हैं :-

- ऋग्वेद के ऐतरेय उपनिषद में - "प्रज्ञानं ब्रह्म"
- यर्जुवेद के वृहदारण्यक उपनिषद में - "अहं ब्रह्मास्मि"
- सामवेद के छान्दोग्य उपनिषद में - "तत्वमसि"
- अर्थवेद के मान्डूक्य उपनिषद में - "अयमात्मा ब्रह्म"

जब तुम खुद उसी की कृति हो - तो महावाक्यों को ध्यान में रखते हुये सदैव वह कृत्य करो जो उस क्षण परमात्मा करता है।

र) परमात्मा सदैव हमारे आत्मस्वरूप में प्रकाशित हो रहा है। यह चारों वाक्यों में जो रूचिकर हो, उसे जब भी मन की दुर्बलता प्रभावित करें- तो स्मरण और सुमिरन कर लेना चाहिए।

ल) मन रूपी इस बगीचे को दृष्टाभाव से देखना है। शरीर में, विचारों में और इन्द्रियों में जो भी घटित हो रहा है, मन वहाँ मौजूद है। इसे ध्यानपूर्वक होश में देखते रहें-तो धीरे-धीरे यह विलीन होने लगता है और अगर भूल गये तो संकल्प, विकल्प और निर्णय तुम्हारे बगीचे को कैक्टस से भर देगे, और जीवन शिथिल मन के चलते झूठी एवं मिथ्या कल्पनाओं में ही बीत जायेगा।

सारांश

- मन रूपी बगीचे का ध्यान रखें। कोई इसे गन्दा न कर पाये।
- अपना लक्ष्य "आत्मोप्लब्धि" है। हर क्षण ध्यान रखें।
- चार महावाक्यों में से एक को आदर्श बनायें एवं विचलन के समय सुमिरन करें।
- एक अच्छा मन, एक स्वस्थ शरीर में ही संभव है। किसी योग्य शिक्षक से योगाभ्यास (प्राणायाम) सीखें।
- ईश्वर को तुमसे किसी प्रकार के कोई परिणाम की अपेक्षा नहीं है।

अतएव ईश्वर को पृथक मानना ही सबसे बड़ी भूल है। जिस क्षण यह ज्ञान हो गया- कि हम उसी के अंशी हैं- तो फिर अंशी ही पूर्ण है- यह धारणा स्वत: आ जायेगी। जैसे घड़े जल में रखे हों, तो "जल में घड़े हैं या घड़े में जल

हैं" में कोई अन्तर नहीं होता है- उसी प्रकार परमात्मा एवं स्वयं में तादात्मय होते ही, मन स्वयं ही लीन हो जाता है और द्वन्द्व के बादल छंट जाते हैं।

अब इस मन रूपी बगीचे में, कीर्तन रूपी क्यारियाँ, सुमिरन रूपी फूल एवं लतायें एवं भक्ति और जिज्ञासा (मैं कौन हूँ?) की खाद नियमित रूप से देनी है। जिसे खाद देनी है-उसे इस कर्मयोग के निष्पादन हेतु स्वस्थ होना भी अति आवश्यक है।

याद रखें- कि "कोई भी अवस्था दु:ख का कारण नहीं होती है" - हाँ उस अवस्था पर हमारे विचार दु:ख का निर्माण करते है।" अतएव आध्यात्मिक यात्रा की प्रगति पथ पर चलने से पूर्व मन का एक आदर्श स्थिति में होना अनिवार्य है।

ब) वर्तमान में ठहराव :- मन, बुद्धि, चित्त, चित्तवृत्तियों एवं अहंकार से एकाकार हमें वर्तमान में नहीं रहने देता। मन के संकल्प/विकल्प, बुद्धि के निर्णय, परिभाषायें (मानी हुयी), विचारों का मायाजाल हमें यह भ्रम उत्पन्न करता है, कि 'मैं' ईश्वर से पृथक है। और फिर 'ईगो' या 'अहंकार' यह बताता है, कि आत्मनिरीक्षण एपं तदोपरान्त आत्मसाक्षारता की स्थिति में कुछ अतिमानवीय घटना घटेगी जबकि यही अपनी असली स्थिति है- शांत, निर्णय, संकल्प एवं विकल्प से परे।

प्रश्न यह है, कि इसे कैसे प्राप्त करें- उत्तर है- कि मन एवं बुद्धि से तादात्मय हटा कर - याद रखों कि मन एवं बुद्धि से उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। वर्तमान में ठहराव की धारणा को दृण करने हेतु एक विशेष प्रकार की क्रिया करें - "विचारों को रोको मत, पर जो विचार कर रहा है- उसके साक्षी बनो" यह क्रिया दिन में जब भी मौका मिलें करें। प्रात:काल ध्यान करते समय जो अन्दर सोच रहा है उसे गौर से देखें। 21 दिन की यह क्रिया आपकों मन पर विजय प्राप्त करवाने में सहायक होगी।

उपरोक्त क्रिया से विचारों की श्रृंखला टूट जाती है। और भले ही एक सेकेण्ड के हजारवें हिस्से के बराबर का अंतराल हो-यही स्थिति "अ-मन" या "अक्रिया" की है - और इसे ही लगातार बढ़ाते जाना है। अचानक से विचार की श्रृंखला रोक दो एवं वर्तमान छण में और सजगता के साथ रहने का प्रयास करो।

- भूतकाल एवं भविष्यकाल, अहंकार को बढ़ाते हैं। केवल वर्तमान में होने से ही, तुम अहंकार का नाश कर सकते हो। विचारों से मुक्ति होते ही अपने रूप का पहला प्रतिबिम्ब दिखायेगा।
- एक और सूत्र है- कि "करने से नहीं, होने से मिलेगा।" वर्तमान में होना, या समभाव में होने के लिये आवश्यक है कि-

- भविष्य का भय त्याग कर दो।
- भूत का पश्चाताप न हो।
- वर्तमान में विचारों की श्रृंखला को तोड़ते रहो।
- अपने असली स्वरूप के प्रति सजग हों।
- जो देख रहा है, सोच रहा है, कर रहा है-उसे देखो।
- पुरानी आदतों को परिवर्तित करो। सोचना एवं लगातार सोचना, विचारों का लगातार चलता रहना एक आदत है। और आदतें बदली जा सकती है।
- तुम्हारा भविष्य, भूत एवं वर्तमान "तुम" नहीं हो- इस वाक्य को दिन में कई बार याद करें। परिस्थितियाँ, जीवन नहीं है।
- जब आप अपने विचार एवं भावनाओं एवं चित्तवृत्तियों को देख रहे होते हैं, तब पहली बार अपने स्वरूप के सबसे नजदीक खड़े होगें।

- शिव सूत्र में बताया गया है, कि श्वांस-प्रश्वांस पर पूरा ध्यान लगाये। श्वांस अन्दर गयी, बाहर गयी। रोकना नहीं है और इस घटना के इस प्रकार दृष्टा बनें कि यह मैं श्वांस ले एवं छोड़ रहा हूँ। मन, बुद्धि एवं चित्तवृत्तियाँ अन्दर के रावण हैं यह तुरन्त विरोध करेगा। पर अगर मन निर्मल है तो कनैक्शन तुरन्त वर्तमान के साथ हो जायेगा।

- "Constant Remembrance" यह अगला पड़ाव है। किस चीज का "Constant Remembrance" करना है- कि "मैं साक्षी हूँ और इस शरीर एवं संसार के खेल को देख रहा हूँ।"

- आत्मबोध की इस अवस्था को प्राप्त करने में पहली बाधा शरीर एवं चित्त की ओर से आयेगी। अगर शरीर में कोई समस्या है, तो उसे भी ध्यान से दृष्टाभाव से देखते रहो- कि अच्छा इस शरीर के हाथ में दर्द है। अद्‌भुत रिजल्ट आयेगें। जितना ही अतंस की यात्रा बढ़ेगी-आंतरिक सुख की वृद्धि होगी। जब आप दृष्टाभाव में हैं- तो चीजों की स्वीकरोक्ति होती है- अन्यथा उनका विरोध शुरू हो जाता है। स्वीकरोक्ति एवं समर्पण ही इस यात्रा का अगला पड़ाव निश्चित कर देता है।

- नाम, यश, अपयश, धन सब सांसारिक है इससे प्रेम, शान्ति एवं आत्मोपलब्धि होना नामुमकिन है। विचारों को दृष्टाभाव से देखना है। उनकी शृंखला तोड़नी है। 'जो है' उसको उसी रूप में स्वीकार करना है। और जो देख रहा है उसे देखना है। यही जीवन में अद्‌भुत रस की वर्षा करेगा। कहा ही है कि 'रसौ वैसः'।

- <u>जो हो रहा है-वही होना चाहिये था</u> - जिस दिन प्रभु पर यह भरोसा हो गया- उसी दिन जीवन रूपान्तिरत हो जायेगा। Expectation is the seed of sorrow. और फिर विचार शुरू हो जायेंगे। कुछ दिन के लिये एक मानसिक ध्यान करो कि तुम एक गदा लेकर विचारों का हनन कर रहे हो- यह क्रिया भी सजग होने में सहायक सिद्ध होगी।

- शांति ढूँढ़ने से नहीं, चीजों को उनके उसी रूप में स्वीकार करने से आती है।

- "जो हो रहा है" उसके अतिरिक्त प्रभु को कुछ नहीं चाहिये। यह भाव जागृत करना है।

- मन 'सूक्ष्म' हैं और जगत उसी का स्थूल स्वरूप है। एक दृष्टा है और दूसरा दृश्य। आत्मा मन का रूप धारण करके जगत का निर्माण कर लेती है। इसीलिये जगत मनोमय है। हमारे मन ने वर्तमान काल के तीन खण्ड कर लिये है। वर्तमान में जो हो गया वह भूतकाल और जो होना है उसकी कल्पना भविष्यकाल है।

  इस जगत में समभाव में रहने की इस प्रकार एक ही विधि है- कि "जो हो रहा है" उसे स्वीकार करो एवं उसे किसी भी भाव जैसे अच्छा, बुरा इत्यादि नामों में मत बाँधों। "जो है-सो है"- ना अच्छा है और न बुरा। बुद्धि निर्णयात्मक रूप से हर घटना को परिभाषित करके एक लेबिल लगाना चाहती है और हमें यह प्रतिक्रियात्मक भाव मिटाना है। इस प्रकार भूत और भविष्य के प्रति आसक्ति को त्यागकर, वर्तमान क्षण (परमानन्द) का चयन करके आत्मस्वरूप का अनुभव किया जा सकता है। याद रखें कि इस यात्रा के ड्राइवर आप स्वयं है और जिस क्षण यह यात्रा शुरू कर देगें उसी समय 'समय' एवं 'मन' शान्त /नष्ट हो जाते हैं। 'कालातीत' शब्द इस स्थिति को व्यक्त करता है और जब तक इस स्थिति को प्राप्त करने का चयन नहीं करते हैं- हम सब बेहोशी में जीते हैं। मुर्दे के समान है।

वर्तमान में ठहराव का सारांश यह है कि –

- अपनी श्वांस प्रश्वांस पर ध्यान दें।
- विचारों को रोके मत, उनके दृष्टा बन जायें।
- विचारों की आदत है। आदत बदली जा सकती है।
- प्रभु ने, इस मार्ग पर चले या न चले यह चयन करने का अद्‌भुत अवसर आपको दिया है। यही उसका प्रेम है।
- विचारों की शृंखला तोड़ते रहें और अपने 'अविचार' के समय को बढ़ाते रहे।
- भविष्य एवं भूतकाल वर्तमान में ही घटित हो रहे हैं। वर्तमान क्षण में ही रहे।

भूतं भविष्यच्च भवत्स्वकाले तद्धर्तमानस्य विहाय तत्वम।

(भूत एवं भविष्यकाल अपने समय में वर्तमानकाल ही होते हैं)

स) क्रिया :- एक बार अगर 'अ-मन' के सागर को स्पर्श कर लिया, तो फिर जो रस इस अर्न्तयात्रा में है- वह बाहर नहीं है। पिछले पैराग्राफ में वैचारिक शृंखला तोड़कर, श्वांस-प्रश्वांस के साथ-साथ चलने की विधि बताई गयी, जिससे दृष्टाभाव को प्रबल बनाया जा सके। उसके पूर्व में मन को ईश्वरीय प्रेम के लिये उर्वरा बनाने हेतु चार महावाक्य बताये गये जिनका उद्‌देश्य यह स्थापित करना था- कि मैं ईश्वर से पृथक नहीं हूँ।

जब इस स्थिति से जिज्ञासु गुजरता है, तो कुछ समय उपरान्त दृष्टाभाव दृढ़ हो जाता है। इस दौरान अगर आवश्यकता हो-तो निम्न में से कोई भी एक यौगिक क्रिया, कुशल गुरू के निर्देशन में शुरू कर सकते हैं।

ध्यान की प्रथम विधि –

जिह्‌वा को तालू में लगाकर अपने अभीष्ट मंत्र का गुंजार करना। यहाँ मंत्र के रूप में कोई भी बीज मंत्र किया जा सकता है। मुँह पूर्ण रूप से बंद रहेगा एवं गुंजार भंवरे के जैसे करना है। उद्‌देश्य एक बार पुनः मन को थकाना है, अद्वैत की भावना उत्पन्न करनी है एवं इस पूरे समय दृष्टाभाव बनाये रखना है-माने यह सतत् रूप से देखते रहें, कि मेरा यह शरीर-उपरोक्त क्रिया कर रहा है। "मैं यह शरीर नहीं हूँ" भावना पर बल देना है।

ध्यान की द्वितीय विधि –

श्वांस-प्रश्वांस को विभिन्न चक्रों के बीजमंत्रों के साथ लयबद्ध कर दें। अगर मन बहुत विचलित है- तो यह क्रिया तुरन्त असर देती है। वे सभी जिज्ञासु-जिनकी कल्पनाशक्ति, विचारों का बनना बन्द ही नहीं करती-इसका प्रयोग अवश्य करें। जीभ को तालू में लगायें और प्रत्येक श्वांस-प्रश्वांस प्रत्येक चक्र पर उसके बीजमंत्र के साथ करें। यहाँ भी अपने स्वरूप पर ध्यान रखें। एक स्वरूप ध्यान करेगा एवं दूसरा दृष्टा बनकर इस भौतिक शरीर द्वारा की जा रही इस क्रिया को पूरी Consciousness के साथ देखेगा। उद्‌देश्य 'अ-मन' के समयांतर को बढ़ाना एवं दृष्टाभाव को दृढ़ करना है।

आत्मबोध अप्रेमय (प्रमेय = ज्ञान का विषय) है। बुद्धि वृत्तियों से केबल भौतिक वस्तुयें ही जानी जा सकती है यही बुद्धि की सीमा है। अतएव जब मन के शान्त तालाब में बुद्धि की वृत्तियाँ शान्त होकर रूक जाती है- तब अन्तःकरण में अहं वृत्ति के शान्त होने पर जो शेष रह जाता है- वही आत्मा है। वही आपका सच्चा स्वरूप है। यही ज्ञान शाश्वत ज्ञान है। यही जानना हमारा परम कर्त्तव्य है। यही शाश्वत प्रेम है। इसके अतिरिक्त और कुछ जानना शेष नहीं है।

ध्यान की तृतीय विधि –

यह विधि 'याज्ञवालवल्य संहिता' से ली गयी है। सीधी हथेली को उल्टी हाथ में रखकर, पद्मासन में सीधे बैठे अर्थात् गर्दन, सर एवं पीठ सीधी हो। नासिकाग्र पर पूरा ध्यान केन्द्रित करें। अब 'हम' की ध्वनि के साथ 12 सेकेण्ड तक बायीं ओर से श्वांस अन्दर लें। अब अग्नि का ध्यान करते हुए 'रंग' की ध्वनि के साथ दायीं ओर से श्वांस छोड़ दें। अब इसी प्रक्रिया को विपरीत क्रम में करें। यही नाड़ी शोधन है। तत्पश्चात् रेचक, कुम्भक एवं पूरक करें। इसमें 16 सेकेण्ड में शरीर में श्वांस भरे (पूरक करें), 32 सेकेण्ड में निकालें (रेचक करें) एवं फिर 64 सेकेण्ड का बाह्य कुम्भक करें अर्थात् न लें। अथवा प्राणायाम की एक दूसरी प्रक्रिया में पहले 64 सेकेण्ड श्वांस रोक कर रखें फिर 16 सेकेण्ड में निकालें और फिर 16 सेकेण्ड में अन्दर लें। ध्वनि करते समय होंठ बन्द रहेंगे।

उपरोक्त विधि किसी कुशल एवं सिद्ध योगी से सीखें। अगर स्वयं करें तो क्रमशः 2 प्रवीणता हासिल करने की चेष्टा करें एकदम से नहीं। यह विधि करने पूर्व, रेचन, कुम्भक एवं पूरक का अलग-अलग अभ्यास करें।

ध्यान की चतुर्थ विधि –

'हमसा' विधि। आने वाली श्वांस के साथ 'हम' एवं बाहर आती स्वांश के साथ 'सा' जोड़ दें। पूरा ध्यान हमसा पर लगा दें। यही 'सोऽहम' मन्त्र का जाप है। प्राण इस प्रक्रिया में मन में, मन, बुद्धि में एवं दोनों चित्त की शांत नदी में समाहित हो जायेगें। अंतःकरण शुद्ध हो जायेगा। यह विधि सबसे सरलतम एवं मझे सबसे प्रिय है। न जोर से, न धीरे जो श्वांस की लय है, उसी के साथ 'हम-सा' को जोड़ दें और जीवन में परिवर्तन देखें।

ध्यान की पंचम विधि –

एक बहती नदी का ध्यान करें। यह चित्त रूपी नदी है। देखें कि इसमें भावनाओं के, राग-द्वेष के, काम, क्रोध, लोभ के मगरमच्छ भी है और प्रेम, वात्सल्य सुख की सुन्दर मछलियाँ भी है। ये सब वृत्तियाँ हैं। नदी में ध्यान करें, कि कोई भी सुख एवं दुःख के भाव जब सतह पर नहीं है। चित्त शान्त भाव से बह रहा है। कोई भी जीव-जन्तु अपना सिर न उठाये, अन्दर ही बहता रहे, साधक अपनी सुविधानुसार नदी के ऊपर शान्त चलती हवा, चाँदनी रात की कल्पना इत्यादि करके ध्यान को दृढ़ करें और ''मैं शरीर से प्रथक कोई सत्ता हूँ'' की भावना को मजबूत करें।

यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है, कि

- प्राणायाम से स्थूल शरीर की शुद्धि होती है।
- धारणा से मन की शुद्धि होती है।
- समाधि से आत्मा का ज्ञान होता है। आत्मा पर पड़े माया के आवरण हट आते हैं।
- "पूर्व एवं उत्तर दिशा में बैठकर ध्यान करने से प्र तिजन्य सहयोग भी प्राप्त होता है।"

ध्यान की षष्ठ विधि –

"ध्यान बिन्दु उपनिषद्" से है। हृदय चक्र में अपने अंगूठे के बराबर अग्निस्वरूप "ॐ" के ज्योतिपुंज का ध्यान करें एवं जिह्वा को स्थिर रखते हुय मानसिक रूप से "ॐ" का जाप करें। अगर "ॐ" को श्वांस-प्रश्वांस की लय से जोड़ दें तो बेहद अच्छा है। यह ध्यान करने के बाद मानसिक विषाद् शान्त हो जाते हैं।

ध्यान और योग बड़े हल्के अर्थों में लिये गये हैं। योग क्रिया है जिसका परिणाम वियोग है (अपने शरीर से)। ध्यान क्रिया है जिसका परिणाम चारों ओर चेतना की सत्ता को महसूस करना है।

उपरोक्त वर्णित क्रियायों के अतिरिक्त जिज्ञासु "शिवसूत्र" पुस्तक का भी अध्ययन करें जहाँ ध्यान की कुल 108 विधियों वर्णित हैं। एक मुख्य बात सदैव याद रखें कि विधियाँ मार्ग हैं- लक्ष्य नहीं। अतएव किसी भी विधि से शुरूआत करके उद्देश्य की ओर बढ़े- "मन को थकाना है-दृष्टाभाव को बढ़ाना है"।

द) निस्वार्थ प्रेम :- निस्वार्थ प्रेम, परमात्मा की स्वीकरोक्ति है। जिस प्रकार ईश्वर ने हमें विवेक रूपी उपकरण दिया है कि हम जो चाहें चुने। ईश्वर केवल दृष्टा है- वह हमारे किसी भी निर्णय को अच्छे/बुरे की कसौटी पर नहीं देखता। ठीक इसी प्रकार अंशी (अर्थात् हम लोग) से भी यही अपेक्षित है- अर्थात "जो हो रहा है है-वही होना चाहिये था", ईश्वर के प्रति अपने प्रेम की अभिव्यक्ति है।

- "जब उसकी मर्जी के बगैर पत्ता नहीं हिलेगा" तो परिस्थिति के दृष्टा बनकर उसके प्रति प्रेम प्रदर्शित करना ही एकमात्र कर्त्तव्य है।
- "परिस्थितियों का जजमैन्ट" करके हम सिर्फ कृतध्नता ही व्यक्त करते हैं और आत्मस्वरूप के अनुभव से स्वत: ही दूर होते जाते हैं।
- प्रेम या तो है या नहीं है। "हम इस ब्रह्माण्ड की कुछ स्थितियों के साथ तो प्रेम में हैं, पर कुछ के साथ नहीं"। यही हमारी दोहरी मानसिकता को दर्शाता है और हमारी आध्यात्मिक उन्नति का Indicator है। जिस क्षण हमें इस संसार की हर परिस्थिति एवं स्थिति से प्रेम हो जायेगा-द्वैत की भावना समाप्त हो जायेगी- अर्थात् "अनुभव, अनुभव करने वाला एवं कराने वाला सब एक हैं" के भाव स्परूप में पुष्ट होने से ही जीवन में आत्मबोध एवं रूपान्तरण हो जायेगा।
- केनोपनिषद कहती है- कि "उसे आँखों से नहीं देखा जा सकता"। "मन के द्वारा नहीं जाना जा सकता है। (यच्चक्षुषा न पश्यति, यन्मनसा न मनुते) कठोपनिषद कहती है, कि वह कठिनता से दिखाई देने वाला है "तम् दुर्दर्शम् देवत्" है। फिर बताया गया है- कि सभी इन्द्रियों को मन में, मन को ज्ञानरूपी बुद्धि में, बुद्धि को आत्मा में और आत्मा को परमात्मा में विलीन करें। इस प्रकार निम्नलिखित चार उपाय -

  अ) मन की जमीन तैयार करना - ज्ञानयोग

  ब) दृष्टाभाव को उत्पन्न एवं दृढ़ करना - कर्मयोग

  स) दृढ़ता को बनाये रखना - राजभोग

  द) नि:स्वार्थ प्रेम एवं समर्पण - प्रेम भक्तियोग

ही हमारे जीवन को नया आयाम देंगी। अपार संभावनाओं की उत्पत्ति होगी एवं आत्मोप्लब्धि होगी।

अर्थात-

- ज्ञानयोग - ज्ञान के द्वारा परमात्मा/स्वयं के स्वरूव का ज्ञान
- राजयोग - ध्यान, धारणा एवं अन्य क्रियायों के द्वारा
- क्रियायोग - निस्वार्थ कर्म की अवधारणा के द्वारा
- भक्तियोग - निस्वार्थ प्रेम की अवधारणा के द्वारा

अब प्रश्न उठता है कि उपरोक्त चार मार्गो में कौन सा रास्ता सबसे अच्छा है? तो इसे, इस उदाहरण द्वारा समझे कि गाय का दूध निकालना है तो दूध निकालने की विधि-ज्ञानयोग यही पूरी क्रिया-कर्म योग, गाय के प्रति प्रेम-भक्तियोग एवं पूरे ध्यान एवं समर्पण के साथ दूध निकालना राजयोग है।

अतएव स्पष्ट है- कि चारों मार्ग आपस में रास्ता नहीं काटते पर आवश्यकता चारों की है। केवल भक्ति प्रदर्शित करने मात्र से गाय दूध नहीं देगी। और केवल कर्म करते रहने मात्र से भी एवं विधि की जानकारी न होने से भी इच्छित परिणाम नहीं मिलेगें। अतएव इन सारे मार्गो को मिलाकर चलने से ही उचित रास्ता प्राप्त होगा।

फिर आत्मबोध के मार्ग को दृढ़ कैसे करें? तो याद रखें कि -

- यत पिण्डे, तत् ब्रह्माण्डे
- तुम्हारे विचार ही तुम्हारे जगत का निर्माण करते
- यह ब्रह्माण्ड हमारे द्वारा सोचता है

विचारों पर नियंत्रण से 'अ-मन' की उत्पत्ति होगी। दो विचारों के बीच यह स्थिति जितनी बढ़ती जायेगी, दृष्टाभाव एवं धारणा दृढ़ होगी और आत्मबोध की जमीन तैयार होगी। और याद यह भी रखना है, कि -

- सो जानहि, जाहे देहि जनाई
- सभै सुलभ, सब दिन सब देशू

वह सदैव उपलब्ध है। जो सदैव प्राप्त है उसकी खोज नहीं करनी है। यह केवल चुनाव है कि- मुझे क्या चाहिये? 'वह' या 'यह' 'प्रेम स्वरूप परमात्मा या यह मायातीत जगत? विडम्बना ही है, कि परमसत्ता से हम सांसारिक सुख माँगते हैं।

अध्याय - 6 >>>

सहज ज्ञान

आध्यात्मिक यात्रा या किसी भी यात्रा के दो बिन्दु हैं। प्रस्थान एवं आगमन के स्थान की जानकारी एवं अपनी तैयारी-तो अगर सरलतम ढंग से कोई पूँछे-कि क्या करना है?- तो हालाँकि कई उत्तर संभव हैं- परन्तु जो अब तक कहा गया, उसी का संक्षिप्त उत्तर इस प्रकार है-

- निर्मल मन एवं शुद्धि चित्त की प्राप्ति प्रथम कर्म है-सगुण ब्रह्म की उपासना, संस्कारजनित कर्मकाण्ड, दान, जप, तप, यज्ञ, प्राणायाय, योग इस शुद्धता एवं निर्मलता को बनाये रखने की खाद है।
- द्वितीय कदम यह जानना है, कि परमात्मा, इंद्रियों का विषय नहीं है। वह इन्द्रियातीत, भावातीत एवं शब्दातीत है। अतएव बुद्धि को अंतर्मुखी एवं चित्त वृत्तियों को शान्त करके जो चेतन सत्ता, शेष रह जाती है-वही आत्मा के सत्य स्वरूप का अनुभव है। दृष्टाभाव उत्पन्न करने एवं दृढ़ करने हेतु विधियों का उल्लेख अध्याय 5 में विस्तार से किया गया है।
- तृतीय कदम परमार्थ ज्ञान का प्राकट्य है- बुद्धि के द्वारा जीव, जगत एवं ईश्वर सब अलग-अलग प्रतीत होते हैं यही अहं है। अहं का मूल खोजने पर हम अपने सत्स्वरूप आत्मा में पहुँच जाते हैं। उसी की अनन्तता एवं आनन्द का अनुभव ही परमात्मा दर्शन है। यही एकमात्र कर्म है-शेष माया है।
- दृष्टाभाव से सदैव वर्तमान में स्थित होते हुये, जब समभाव एवं समदृष्टि के साथ अविरल प्रेम का अनुभव हो तो समझो कि यात्रा पूरी हो गयी। अहं यहाँ मोह का एक अन्तिम द्वार फिर खोलता है-लोगों का मानना है,

कि आत्मसाक्षात्कार होते ही एक दिव्य रोशनी, व्यक्ति के शरीर से निकलने लगेगी और सिद्धियाँ प्राप्त हो जायेगी। यह सब मिथ्या है।

आत्मसाक्षात्कार, एक अवस्था का नाम है, और यह केवल आपके मूल स्वरूप (जो कि विशुद्ध एवं चैतन्य है) का अनुभव मात्र है। और जैसे कि पूर्व में स्पष्ट किया है- कि ज्ञान, भक्ति एवं कर्म तीनों ही घोड़े इस रथ में लगाने होगे-ताकि यह रास्ता तय किया जा सके। प्रेम तभी उत्पन्न होगा, जब द्वैत भाव मिट जाता है। जब सभी रूपों में उसी एक शाश्वत सत्ता का सत्‌चित्त विलास हो रहा है, और ''मैं भी वहीं प्रेम स्वरूप चेतना हूँ- न कि यह शरीर" तो यही चेतना का अनुभव एक सतत् प्रेमानन्द एवं अवर्चनीय रस की उत्पत्ति करता है। और यही हर जीवात्मा का अन्तिम ध्येय है।

- जिस प्रकार 'भाप' एवं 'बर्फ' में कोई भेद नहीं, उसी प्रकार सगुण एवं निर्गुण में कोई भेद नहीं है। अतएव शुद्ध चित्त एवं समर्पण भाव ही योग्यता की प्राप्ति कराता है।

- 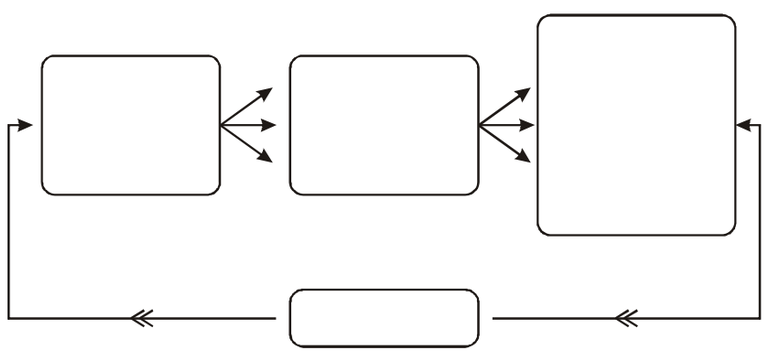

यह अहं जहाँ है, वहीं तक की यात्रा करनी है। इस अंर्तयात्रा के अंत में पहुंचने पर कोई वृत्ति नहीं रह जाती। अहं भी टूटकर गिर जाता है। यही आत्मज्ञान है। संसार एवं उसमें निहित द्वन्द्व, जब समाप्त हो जायें, तब जानिये कि एकात्मकता का रस बहना शुरू होगा।

- "मैं यह शरीर हूँ" मानते ही कर्ता एवं भोक्ता भाव उत्पन्न होता है। यही अज्ञान का स्वरूप है। और अगर आत्मविकास करना है-तो एक ही विचार पर बल देना होगा, कि "मैं परमात्मा का अविच्छिन अंश हूँ"-यही तत्वज्ञान या सम्यक ज्ञान है।

- परन्तु यह भी बेहद आवश्यक है, कि हम इस खेल को समझें कि यह कौन कह रहा है- कि "मैं शरीर नहीं आत्मा हूँ"। यद्यपि मन यह कह रहा है कि आत्मा मेरा स्वरूप है, पर इसका तात्पर्य क्या है? - मन ने फिर चाल चल दी है- मन अपनी सत्ता बनाये हुये है और आत्मा को एक अन्य वस्तु की तरह बता रहा है। अगर बारीकी से इसका विवेचन करेंगे तो मन और आत्मा में भेद बना हुआ है। अतएव यह न माने- कि आत्मा मेरा स्वरूप है, वरन मानना यह है, कि "यह आत्मा ही मैं हूँ"।

- आत्मज्ञान उपलब्ध होने पर न तो आत्मा के दर्शन होने हैं, न ही कोई प्रकाश पुंज आपके शरीर से निकलेगा और न ही कोई गन्ध आने लगेगी। सबसे मजेदार बात यह है- कि अगर मैं कहूँ- कि "मुझे आत्मा का ज्ञान नहीं" तो मैं अज्ञानी हूँ और अगर कहूँ- कि मुझे "आत्मा का ज्ञान है"- तो भी अज्ञानी हूँ- क्योंकि "आत्मा का ज्ञानी आत्मा से अलग" कैसे हो सकता है। याद रखें- कि आत्मा दृष्टा अभिन्न है। अतएव मेरा मत है- कि परमात्मा को 'पाना' नहीं हैं- बल्कि 'होना' है। खोजना और पाना केवल शब्द मात्र हैं- जोकि "कोई यात्रा करनी है- ऐसा भाव कराते हैं। परन्तु अन्त में न कोई यात्रा करनी है, न खोजना है, न पाना है। बस हो जाना है। बस मुख्य सूत्र यही है- कि "आत्मा, आत्मा के लिये भी दृश्य नहीं है"। यह कबीर का "गूँगे का गुड़" है।

- योग, प्राणायाम, जप, तप, साधना पथ की सवारी है। जिस प्रकार जब मार्ग पर चल रहे हैं, तब तो सवारी की उपयोगिता है, परन्तु लक्ष्य पर पहुँच कर सवारी का कोई उपयोग नहीं। लक्ष्य क्या है? दृष्टाभाव का वर्तमान

क्षण में दृण होना ही लक्ष्य है।

मैं देख रहा हूँ – कि मैं श्वांस ले रहा हूँ।

मैं देख रहा हूँ – कि मैं योग कर रहा हूँ।

मैं देख रहा हूँ – कि मैं प्राणायाम कर रहा हूँ।

मैं देख रहा हूँ – कि मैं जप, तप, दान कर रहा हूँ।

मैं देख रहा हूँ – कि मैं मंत्र कर रहा हूँ।

किसी भी परिस्थिति को judge नहीं करना है। "जो हो रहा है–वही होना चाहिये" यही ब्रह्मवाक्य, दृष्टाभाव को वर्तमान में रखने में सहायक होता है। और जब दृष्टाभाव वर्तमान में, (सारे राग, द्वेष, ईर्ष्या, काम, क्रोध, लोभ, मोह से परे) अपने मूल स्वरूप का सुख ले रहा हो–तो फिर मंत्र, जप, तप सब छूट जायेगा। एक बार अनुभव हो गया, फिर किसी तोतारटन्त की आवश्यकता नहीं है। आत्मज्ञानी को यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मैं आत्मा हूँ।

- बुद्धि को शुद्ध करने हेतु गाय से दूध निकालने के उदाहरण से समझें– श्रद्धा की गाय को सत्कर्म का चारा खिलायें, भाव रूपी बछड़ा बाँधे, निर्मल मन से दुहें फिर निष्काम अग्नि में पकायें फिर ज्ञान रूपी घी से जामन दें–विचार की मथानी से मथे, वैराग्य का मक्खन निकालें और योग की अग्नि पर पका क ज्ञान का घी निकालें। इससे अंत:करण में दीपक जलायें। इस दीपक की रोशनी में ही माया का मिथ्यातत्व एवं 'सत्' का सत्यत्व दिखाई देगा।

- एक और सरल उपाय हैं– यह उपाय सोऽहं की जगह दासोऽहं का है। अपने आपको एक बालक मान लो और समर्पण कर दो। कर्ताभाव तिरोहित होते ही परम सत्ता का अनुभव होगा। कितनी अद्‌भुत बात है– कि मैं विषय, वस्तुओं, कामनाओं और भोगों का दास नहीं, परमात्मा का दास हूँ। यह भावना दृढ़ हो जाये, तो बन्धन मुक्त हो गये। बाल सुलभ क्रीड़ाये उस ब्रह्म के साथ करो। चूँकि तुम बड़े हो गये, निर्णय लेने लगे, संकल्प/विकल्प करने लगे, अपने को जीव व शरीर मानने लगे, संसार में सुख और दु:ख से प्रभावित होने लगे, तो बन्धन में फंस गये। पर अगर अपने हर कर्म के दृष्टा हो गये तो ब्रह्म से एकता का अनुभव हो जाने पर यह संभव ही नहीं कि ब्रह्म, ब्रह्म को बन्धन में डाले। बस इतना ही सरल है– जिस दिन यह भाव आ गया कि मैं बालक स्वरूप ब्रह्म का अंशी एवं सबसे प्रिय हूँ तो अब माया मुझे कैसे बाँधेगी। पर अगर मन कमजोर है, बुद्धि संसार में है, तो आम आदमी के लिये माया से निकलना नामुमकिन है। इसीलिये कई ज्ञानियों ने यह व्याख्या लिखी है– कि आत्मोपलब्धि तो इसी क्षण मुमकिन है– प्रश्न यही है कि क्या हम माया का चयन करते हैं या परमसत्ता का?

तुलसीदास जी लिखते हैं, कि ''हे–

श्रुति विदित उपाय सकलसुर, केहि केहि दीन निहौरे।

तुलसीदास येहि जीव मोह-रजु, जेहि बाँध्यो सोइ छोरै।

(हे प्रभु, यह माया आपने बनाई, बंधन आपने बनाया, जीव आपने बाँध दिया, अब आप ही कृपा करके बंधन खोल दो)।

सारांश –

- वह 'प्रेम' स्वरूप परमात्मा सदैव उपलब्ध है।

- ''अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोध'' वैराग्य के अभ्यास से मन को दृण करते हुये एवं चित्त वृत्तियों की शान्त करके चेतना की उस सीढ़ी पर पहला पैर रख सकते हैं।

- ''प्रेम गल अति सांकरी, जामै दुई ना समायें'' संसार और अपने 'मूल

स्वरूप' दोनों में से एक को चुनना होगा। एक बाहर की यात्रा है, दूसरी अंदर की भगवान कृष्ण कहते हैं – (गीता 11/69) कि संसारी के लिये जो दिन है – ज्ञानी के लिये वह रात्रि है। चित्त के तालाब में, मन अगर ऊपर तैर रहा है, वृत्तियों का ज्वार भाटा आया हुआ है – तो दृष्टा तालाब में नीचे से देखता है और यही उसके लिये रात्रि के समान है और अगर मन इस तालाब में नीचे चला जाये, तो दृष्टा ऊपर आ जायेगा। प्रेम ही यह तय करेगा, कि वापसी की यात्रा शुरु हुई है या नहीं।

- अब चुनाव तुम्हारे हाथ में है। इस यात्रा में प्रश्न करने, बन्द करे बगैर अंहकार को शान्त नहीं कर सकते। परमात्मा और तुम्हारे बीच – मानी हुई दूरी है – इसे इसी क्षण समाप्त करके आत्मस्वरूप में निष्ठित हुआ जा सकता है। अध्यात्मिक दृष्टिकोण के इस चुनाव का विवेकाधीन निर्णय जीवात्मा के हाथ में देना ही परमात्मा का तुम्हारे प्रति अविरल प्रेम है। इस प्रेम का उत्तर प्रेम से देना ही जागरण है और इस प्रेम में कर्ता और भोक्ता भाव के तिरोहित होने का नाम ही आत्म साक्षात्कार है। इति –

ऊँ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते

ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः